# चक्रव्यूह

## सांस्कृतिक नाटक



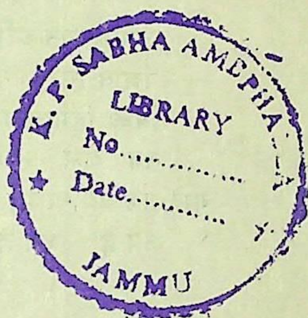
लक्ष्मीनारायण मिश्र

कौशाम्बी प्रकाशन, इलाहाबाद



# चक्रव्यूह

काशी नागरी प्रचारिणी सभा,
वाराणसी तथा उत्तर
प्रदेश सरकार द्वारा
पुरस्कृत




अभिमन्यु के जीवन पर
आधारित संस्कृति-
प्रधान पौराणिक
नाटक

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

# राष्ट्रीय गान

जनगणमन-अधिनायक जय हे, भारतभाग्य विधाता।
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कल बङ्ग ॥
विंध्य हिमाचल यमुना गङ्गा, उच्छल जलधि तरङ्ग।
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिस मागे ॥
गाहे तव जय गाथा, जनगण-मंगलदायक जय हे, भारतभाग्य विधाता
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे।

चतुर्दश संस्करण ● संवत् २०२२ विक्रम

मूल्य :
एक रुपये पचहत्तर पैसे

प्रकाशक :
कौशाम्बी प्रकाशन
दारागंज, इलाहाबाद—६

मुद्रक :
बांसल प्रेस, इलाहाबाद

# पूर्वरङ्ग

संसार की पुरानी संस्कृतियों का पता हमें उनके पौराणिक साहित्य से चलता है। जिस जाति के जीवन में उसकी पौराणिकता मिट गयी, पुराने विश्वास धुँधले पड़ गये, जीवन के परम्परागत मानदण्ड बिखर गये, उस जाति की समूची संस्कृति का अन्त हो गया। इतिहास के किनारों पर छितराये उन संस्कृतियों के ध्वंसावशेष इस बात के प्रमाण हैं। दूसरी ओर लोकजीवन में, साहित्य और कला के नये रूपों में जो जाति अपने पौराणिक आधार को सँवारती चली, युग और कालभेद के अनुसार अपने पुराने मूल से भी रस लेकर अपने नये जीवन का पोषण करती चली, उसकी संस्कृति के विकास का क्रम नहीं टूटा। प्राचीन यूनान, मिस्र और यूनानी शोकान्तिकाओं के लेखकों की पौराणिक परम्परा का मिटना यूनानी संस्कृति का अन्त बना। यही दशा मिस्र और रोम की भी हुई। इस देश में वाल्मीकि और व्यास की परम्परा का अन्त आज तक नहीं हुआ। संस्कृति के कवि रामायण, महाभारत और दूसरे पुराणों से अपने काव्य, नाटक, आख्यायिका का विषय लेते रहे; प्राकृत, पाली से पार कर अपभ्रंश काल और आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं में वह क्रम अभी तक चल रहा है। चिन्तन और निर्माण की इसी अटूट परम्परा में हम अपनी संस्कृति की धारा अटूट देखते हैं। वाल्मीकि की 'रामायण', तुलसी के 'रामचरित मानस' और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण के 'साकेत' का आधार श्री रामचन्द्र के विभूतिसम्पन्न चरित्र की पौराणिक कथा है। युग की प्रवृत्तियों के

अनुकूल इन तीनों ग्रन्थों के आधार की एकता के साथ ही आकार-योजना में मौलिक भेद भी है। रामचरित्र का सत्य आदिकवि ने अपने युग के अनुकूल दिया, गोस्वामी तुलसीदास ने अपने युग के अनुकूल; और यही कार्य हमारे इस नये जागरण में मैथिलीशरण ने उसी कथा को इस युग के साँचे में ढाल कर किया। इन कवियों की निसर्गजात प्रतिभा, ज्ञान और बुद्धि की परिधि के अनुरूप इनकी रचनाएँ बन पायीं। पौराणिकता के जीवित रहने का अर्थ होता है जाति का जीवित रहना। यह बात मैं निष्ठा के वेग में कह रहा हूँ, इसमें किसी को भ्रम न रहे।

इस नाटक 'चक्रव्यूह' की प्रेरणा बस इतनी ही है। भारतीय-जीवन दर्शन के मूलभूत सिद्धान्त जो तब थे और आज भी हैं, इस रचना में चरित्रों के संवाद और व्यापार के कलेवर में अनायास मेरी कल्पना से उतरते रहे हैं। महाभारत के इस पौराणिक आख्यान को अधिक से अधिक मानवीय और बुद्धि-संगत रूप देने का प्रयत्न रहा है। रामायण और महाभारत अपने सर्वमान्य आधुनिक रूप में जाने के पूर्व, युगों तक राजभवनों के सिंहद्वारों पर जातीय उत्सवों में चारणगीतों के रूप में गाये गये, लोक की भाव-भूमि में ये युगों तक बढ़ते रहे, फूले, फले और अन्त में वाल्मीकि और व्यासदेव के नाम में इनका परिमार्जित और विकसित रूप आया। संसार के सभी महाकाव्यों की भाँति इनमें विजेताओं का उत्कर्ष और विजितों का अपकर्ष प्रधान अंग बन गया।

आज का कवि या तो उसी पुरानी लीक पर आँख मूँद कर चले या पौराणिकता के इस रूप पर नया प्रकाश डाले, ऐसा प्रकाश जो हमारी बुद्धि का और हमारी भावनाओं का हो, जिसमें पौराणिक

चरित्र अपने शुद्ध मानवीय रूप में हमारे सामने खड़े हों, जिनके भीतर हमें अपने राग-विराग मिलें, जिन्हें हम ठीक-ठीक वैसे ही जान-पहचान सकें जैसे हम उन लोगों को पहचान लेते हैं, जिनका प्रभाव किसी न किसी रूप में हमारे जीवन पर पड़ता है। इस नाटक में अतीत के चरित्र अर्जुन और सुयोधन, अभिमन्यु और लक्ष्मण आदि अनासक्त वृत्ति से देखे गये हैं, किसी के प्रति नाटककार का निजी लगाव नहीं हैं, उसकी ओर से न्याय का अवसर सबको समान मिला है और अन्त में उसकी समवेदना के आँसू भी सबके लिए समान हैं। पाण्डव और कौरव दोनों पक्षों को पुण्य और पाप का प्रतीक न मान कर अपनी परम्परा के स्वाभाविक मानव का रूप दिया गया है। अब समय आ गया है जब हम अपनी पौराणिक घटनाओं और उससे संबन्धित व्यक्तियों के साथ न्याय करें। इस रूप में हमारा अतीत केवल बुद्धिसंगत नहीं हमारे लिए उपयोगी भी होगा।

चक्रव्यूह के घटनाक्रम पर यह नाटक लिखा गया है, जिस घटना में युद्ध की प्रधानता है। केवल युद्ध को आधार बना कर नाटक लिखना नाटक के भारतीय सिद्धान्तों के प्रतिकूल होता। भरत ने रंगमंच पर जिन व्यापारों का निषेध किया है, उनमें युद्ध भी है। इस कठिनाई को पार करने के लिए युद्ध का चित्रण अन्य पात्रों के माध्यम से कहीं सूक्ष्म है और कहीं नेपथ्य की आड़ में। फिर भी वीर और रौद्र रस का परिपाक अभिमन्यु के रणकौशल में है। लक्ष्मण के साथ उसके समर में करुण रस आरम्भ होकर उस समय व्यापक हो उठता है जब सुयोधन अपने एकमात्र पुत्र लक्ष्मण के निधन के बाद भी अभिमन्यु की प्राणरक्षा में दौड़ पड़ता है और अन्त में अभिमन्यु का शीश अपनी गोद में लेकर क्रोध और वैर से छूट कर तन्मय हो जाता है। नाटक

के आरम्भ में धर्मराज और द्रौपदी का अभिमन्यु के प्रति अनुराग, सुभद्रा का पुत्र-प्रेम; उत्तरा का पत्नी-धर्म और अन्त में पितामह भीष्म की बाणशय्या के निकट के व्यापार नाटक को करुणरस-प्रधान कर गये हैं।

संवाद, व्यापार, परिस्थिति और घटनाक्रम जिस अंश तक इस नाटक में स्वाभाविक हो सके हैं उसी अंश तक इसकी सफलता मानी जायगी, जिसका निर्णय पाठक करेंगे। पौराणिक कथानक के अधार पर मनोवैज्ञानिक नाटक लिखने का यह मेरा दूसरा प्रयास है। इस तल का पहला नाटक 'नारद की वीणा' आठ वर्ष पहले लिखा गया था। 'गरुड़ध्वज', 'वत्सराज' आदि पिछले अन्य नाटक ऐतिहासिक आधार पर लिखे गये। 'सिन्दूर की होली' से नाटक में गीत देना मैं छोड़ चुका था, इसलिए कि गीत का स्वाभाविक अवसर जब तक नाटक के वातावरण में न बने तब तक गीत देना नाटक की गठन का बिगाड़ देना है। पौराणिक परम्परा के अनुसार युद्ध-क्षेत्र में चारण और वैतालिक-गीत वीरों की प्रशस्ति में बराबर गाये गये हैं। इस नाटक में इस परम्परा का वातावरण बराबर बनता रहा है, इसलिए इसमें परिस्थिति विशेष के रंग में गीत भी दे दिये गये हैं।

अभिमन्यु और लक्ष्मण की मृत्यु में कुरुवंश के नाश का भय पितामह भीष्म को क्यों हुआ? इस विषय में दो शब्द कहने पड़ेंगे। द्रौपदी के पाँच पुत्रों की चर्चा महाभारत के युद्धपर्व में और गीता के आरंभ में मिलती है। इनका जन्म कब और कहाँ हुआ? इसकी सूचना मुझे महाभारत में नहीं मिली। कदाचित् अपराजित अवश्वत्थामा के चरित्र को हीन करने के लिए इन पांच पुत्रों की बात गढ़ी गयी। इस विषय का कवि सत्य जो मेरी कल्पना पर उतरा है वह विस्तार के साथ

मेरे अधूरे महाकाव्य 'सेनापति कर्ण' में आ चुका है। पाँच पुरुष की एक नारी से अलग-अलग पाँच पुत्र ही हुए, पुत्री एक भी नहीं हुई अथवा यह भी नहीं हुआ कि किसी के दो पुत्र हों और किसी को एक भी नहीं। यह प्रसंग मेरे विश्वास के प्रतिकूल है। इस प्रकार का शुद्ध श्रम-विभाजन सम्भव नहीं। पाण्डव-कुल में अभिमन्यु और कौरव-कुल में लक्ष्मण से ही वंश-परम्परा को चलना था। दोनों के निधन से दोनों ही कुल डूब गये। नाटक के अन्त में उत्तरा का गर्भस्थ-शिशु दोनों कुलों की रक्षा का आधार बनता है, जिसके लिए भानुमती और सुभद्रा पुत्र-वधू उत्तरा के शीश पर हाथ रख कर कुल के भावी मंगल की कामना करती हैं।

उत्तरा के भावी पुत्र से दोनों कुलों को चलना था। नाटक लिखते समय इस विचार ने केवल कवि-सत्य का रूप लिया पर बाद में श्रीमद्भागवत में इसका साक्ष्य भी मिल गया।[1]

**लक्ष्मीनारायण मिश्र**

---

[१] द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदंगं
सन्तानबीज कुरु पाण्डवानाम्।
जुगोप कुक्षिगत आतचक्रो
मातुश्च मे यः शरणं गतायाः॥

श्रीमद्भागवत १०—१६

# पात्र-सूची

**पुरुष पात्र**

**पाण्डव पक्ष के जन**

| | |
|---|---|
| अभिमन्यु | युधिष्ठिर |
| भीमसेन | अर्जुन |
| धृष्टद्युम्न | सात्यकी |
| कृष्ण | नकुल |
| सुमित्र | चारण, चर आदि |

**कौरव पक्ष के जन**

| | |
|---|---|
| भीष्म | द्रोण |
| सुयोधन | कर्ण |
| अश्वत्थामा | दुःशासन |
| लक्ष्मण | जयद्रथ |

**स्त्री पात्र**

| | |
|---|---|
| द्रौपदी | उत्तरा |
| सुभद्रा | भानुमती |

प्रतिहार आदि।

# पहला अङ्क

[युद्ध-भूमि में धर्मराज युधिष्ठिर का मन्त्रणा-शिविर। गम्भीर विचार और चिन्ता की मुद्रा में युधिष्ठिर दूर क्षितिज की ओर देख रहे हैं। सूर्य पिण्ड दायीं ओर आकाश में ऊँचे चढ़ चुका है। भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकी, नकुल, सहदेव पक्ष के और कई वीरों के साथ धर्म-राज के सामने शस्त्रों पर हाथ धरे बैठे हैं। किसी के हाथ में गदा, किसी के धनुष, किसी के खड्ग और किसी के भल्ल आदि अन्य शस्त्र हैं। कोई किसी की ओर संकेत से देख लेता है; किसी की आँखें शिविर के बाहर युद्ध-भूमि की ओर लगी हैं, किसी की धरती की ओर कोई ऊपर देखने में अचेत हो रहा है। संकट का प्रभाव सबकी आकृति पर रंग भरता जा रहा है। शत्रुओं का हर्षनाद और बन्दी-गान रह-रह सुनायी पड़ते हैं।]

भीमसेन (गदा हिलाकर और दन्त-पंक्तियों में एक बार निचला अधर दबाकर) मुझसे अब यह नहीं सहा जायेगा तात! शत्रुओं की यह मर्मभेदिनी हँसी, विजय और हर्ष का यह उन्माद...सुन रहे हैं आप चारण क्या गा रहे हैं?

धृष्टद्युम्न गा रहे हैं...पाण्डुपुत्रों की यह कालरात्रि है और कौरवों के भाग्य का सूर्य इस समय ऊँचे सबसे ऊँचे आकाश के मध्य विन्दु पर है।

सात्यकी हा...हा...हा ( उपहास की हँसी) गुरुदेव अर्जुन को देखते ही विजय का यह मद उतर जायेगा तब वे अधमरे साँप से धरती पर लोटते रहेंगे ।

युधिष्ठिर देव की गति है यह...( गहरी साँस खींचते हैं )

भीमसेन देव की गति वीर नहीं मानता तात ! पौरुष दैव की गति भी बदल देता है ।

युधिष्ठिर (अपने ओठ पर उँगली रखकर ) अहंकार होगा यह तुम्हारा भद्र ! बाल-ब्रह्मचारी, लोक-विजयी पितामह भीष्म के पौरुष में तब तुम संदेह कर रहे हो ? दोपहर के सूर्य सा जो पौरुष कभी मन्द नहीं हुआ...न...रुकी दैव की गति उससे भी । वीर का सबसे बड़ा शत्रु उसका अपना अहंकार होता है भीमसेन ! यह न भूल जाना ।

भीमसेन न मैं धर्मराज हूँ और न धर्म की सूक्ष्म गति का मुझे पता है । इस गदा की परिधि के बाहर मेरे प्राण की भी गति नहीं । जब तक इसकी गति बनी है तात ! तभी तक मेरे धर्म और प्राण दोनों की गति बनी है । पितामह भीष्म ने शस्त्र फेंकने के साथ ही क्या पौरुष भी नहीं फेंक दिया ?

युधिष्ठिर ( दुःख के स्वर में ) भीमसेन......

भीमसेन जो समझ रहा हूँ...पितामह के आचरण में शङ्का कर पाप का भागी बनना है । शिखण्डी जिस वेष में रथ पर बैठा था, वह वेष, वस्त्र, आभूषण और अंग-विन्यास में नारी का था । शीश के नीचे काले नाग-सी लहराती लम्बी वेणी, आँखों में

अञ्जन की रेखा, कण्ठ में चन्द्रहार, श्मश्रु-हीन मोहक मुख-मण्डल, तरुणी के रूप में उससे अधिक सम्मोहन क्या होगा ? फिर भी प्राणरक्षा में बड़ा धर्म दूसरा क्या था जिसके लिए पितामह ने घृणा से शस्त्र फेंक कर मुख मोड़ लिया ?

सात्यकी नारी की ओर न देखने की उनकी प्रतिज्ञा जो थी। प्राण से कहीं अधिक आकर्षण था उनके लिए प्रतिज्ञा का।

भीमसेन तब फिर दैवगति का उन्होंने स्वागत किया, हारे नहीं वे उससे......

नकुल बीती बातों में उलझने का अवसर यह नहीं है तात ! संकट की जिस बेला में पाण्डवों की लीक मिट रही है, पितामह के आचरण की चिन्ता न कर हम अपने आचरण की चिन्ता करें। शत्रुओं के हर्ष का समुद्र हमारी कीर्ति की ध्वजा को सदैव के लिए बोर देना चाहता है। हमारे यशरूपी चन्द्रमा का राहु द्रोण का चक्रव्यूह बन जायगा, कौन जानता था !

युधिष्ठिर इस रोग की औषधि मुझे नहीं सूझती। सब ओर अन्धकार... समुद्र के जल से गहरा, विस्तार में उससे भी अधिक। कोई हाथ पकड़ कर मुझे मार्ग दिखाये। मेरी अपनी आँखों में कुछ सूझता नहीं। (दोनों हाथों से सिर थाम कर)

भीमसेन (कठोर स्वर में) मेरी गदा से वह मार्ग बनेगा।

युधिष्ठिर फूंक से पर्वत उड़ा देना और जीभ से समुद्र सोख लेना सम्भव हो सकेगा भद्र ! पर गदा से चक्रव्यूह का भेदन न होगा। बिना विवेक के वीरता महासमुद्र की लहर में डोंगी-सी डूब जाती है।

धृष्टद्युम्न श्रीकृष्ण और अर्जुन को सूचना दी जाय। वे जान लें कि उन्हें संसप्तक युद्ध में दूर भेज कर द्रोणाचार्य ने ऐसे कठिन व्यूह की रचना की है, जिसका चित्र भी हमने नहीं देखा। जिसके भेदन की कला हमने कभी कान से न सुनी, आँखों से देखने की बात तो और है।

युधिष्ठिर इस विद्या के बिना जाने या व्यूह में फँसकर हम प्राण दें अथवा आज के युद्ध में पराजय मानकर अपने शिविरों में पड़े रहें और शत्रुओं के तानें सहें। चक्रपाणि कृष्ण और गाण्डीवधारी अर्जुन के रहते हमारी दशा महा-समुद्र में बिना नाविक के पोत-सी हो रही है

सात्यकी शत्रु-पक्ष में इस व्यूह के भेदन की कला कितने वीर जानते हैं।

युधिष्ठिर पितामह भीष्म से रणविद्या का कोई अंग छूटा नही था। धनुर्वेद के एकमात्र अधिकारी वीरमण्डली के सूर्य भगवान् परशुराम जिनके गुरु रहे; उन देवव्रत को इस कला का ज्ञान रहा होगा। आचार्य द्रोण ने इस व्यूह की रचना में ही इस विद्या पर अधिकार सिद्ध कर दिया। कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कर्ण इस कला के ज्ञाता होंगे, इस अनुमान के प्रमाण मिल जायेंगे।

सात्यकी और अपने पक्ष में ? (उत्सुक होकर साँस रोक लेता है)

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण, अर्जुन और प्रद्युम्न…

सात्यकी प्रद्युम्न इस युद्ध से विरत है। कुरुभूमि में जिस समय युद्ध के पहले शङ्ख बजे, बलराम के साथ वे भी तीर्थाटन के लिए चले

गये। श्रीकृष्ण और अर्जुन इस यज्ञ के प्रधान होता होकर भी इस समय दूर हैं। गुरुदेव जो मुझे यह कला बता दिये होते तो इस अवसर पर काम आती।

चर (प्रवेश कर) जय हो देव !

युधिष्ठिर व्यूह की जो कुछ भी सूचना मिली हो; एक साँस में कह जाओ चर।

चर जिसकी एक-एक बातमें साँस रुकने लगती है, यमपुरी से भी भयानक उस व्यूह की सारी बातें एक साँस में कह देना विन्ध्य को जल पर तैराना होगा। जो बात पहले कभी सुनी नहीं, उसे कहने को शब्द कहाँ मिलेगा ? अधूरी सूचना भी उसकी दे सकूंगा; उसके एक या दो अंश की सूचना मुझसे आपको मिल सकेगी...इसमें विश्वास मुझे नहीं है।

भीमसेन जो कुछ तुमने देखा हो। (उत्सुक मुद्रा)

चर गरुड़ उस व्यूह में प्रवेश नहीं पायेगा। शत्रु ऐसे असावधान नही हैं कि आपका चर चक्रव्यूह के निकट जाकर फिर लौट पाता जो सुना-सुनाया जान सका बस उतना ही।

युधिष्ठिर अच्छी बात चर ! वही कहो।

चर चक्र के आकार का व्यूह सात मण्डल चक्रों में बना है। हर मण्डल द्वार का रक्षक शत्रुसेना का कोई प्रधान वीर एक लाख सेना और सहचरों के साथ सुमेरु-सा अडिगभाव से आपकी सेना की बाट जोह रहा हैं। प्रधान द्वार और

मण्डल-द्वारों पर चारण विजय और उत्कर्ष के गीत गा रहे हैं। क्षीरसमुद्र से अधिक गम्भीर ध्वनि व्यूह से निकल कर दिशाओं में भर रही है।

भीमसेन प्रधान द्वार का रक्षक कौन है चर ?

चर सिन्धुराज जयद्रथ। व्याघ्र चर्म-मण्डित सोने और रत्नों से बना उनका रथ आकाशगामी सूर्य के रथ से होड़ ले रहा है। सेनापति आचार्य द्रोण उनके दायें अपने रथ में वीरासन मारे बैठे हैं। पर सुना यही गया कि इस द्वार के प्रधान रक्षक जयद्रथ है द्रोण नहीं।

सात्यकी मण्डल-द्वारों के रक्षक कौन हैं ?

चर इस विषय में जितने मुँह उतनी बातें सुनने में आयीं। कर्ण और कृपाचार्य के साथ सुयोधन व्यूह के अन्तिम द्वार पर हैं, या कर्ण दूसरे द्वार पर हैं दोनों बातें सुनी गयीं पर सच क्या है कौन जाने ?

युधिष्ठिर साधु चर ! कुछ और सुना ?

चर इस व्यूह में प्रवेश करने वाला प्राण लेकर लौट नहीं सकेगा। जयद्रथ ने प्रतिज्ञा की है कि अकेले अर्जुन को छोड़कर किसी भी दूसरे रथी को वह व्यूह में घुसने न देगा।

सात्यकी अरे ! यह इतना बल जयद्रथ में कहाँ से आ गया ?

भीमसेन स्वप्न में देवलोक की कोई अप्सरा उसे इतना बल दे गयी होगी।

धृष्टद्युम्न तो अब अप्सराएं स्वप्न में बल देने लगी ! अच्छा हो स्वप्न माँग किसी अप्सरा को बुलाकर तुम भी ऐसा ही बल माँग लो ! (मन्द हँसी)

भीमसेन (धीरे से) द्रौपदी स्वप्न में भी किसी अप्सरा को मेरे निकट जो आने दे तब न ! स्वप्न में भी बस वह अकेली आना चाहेगी। बेचारी अप्सराएँ जिसके नाम से ही भाग चलती हैं। कह दो अपनी बहन से कुछ दया दूसरों पर भी करें। (मन्द हँसी)

चर ठीक है वीरता का भार परिहास से चलता है। संकट में जिसे हँसी न सूझे वह और चाहे जो हो वीर नहीं होता। बस एक बात मुझे और कहनी है।

भीमसेन
धृष्टद्युम्न
सात्यकी } हाँ...हाँ कहो चर ! (उत्सुक मुद्रा में सब देखने लगते हैं।)

चर पीठ में बाण मारकर जो पितामह गिराये गये...

युधिष्ठिर हाँ कहो चुप क्यों हो गये ! (साँस रोक कर देखते हैं।)

चर इस व्यूह में उसका प्रतिशोध होगा।

भीमसेन किसके साथ...?

चर जो इसमें प्रवेश करे। यमराम का निमन्त्रण जिसे आज मिला हो। सुयोधन से इसकी प्रतिज्ञा आचार्य द्रोण ने की है।

युधिष्ठिर किस बात की प्रतिज्ञा भद्र ? (उद्वेग की मुद्रा)

चर आपकी सेना का कोई महारथी इस चक्रव्यूह में आज परलोक जायेगा। आपके पक्ष के किसी एक महारथी का अन्त आज द्रोण करेंगे।

भीमसेन गरजने वाला बादल बरसता नहीं है।

युधिष्ठिर और जो कहीं वह बरसने लगे ?

मण्डल-द्वारों पर चारण विजय और उत्कर्ष के गीत गा रहे हैं। क्षीरसमुद्र से अधिक गम्भीर ध्वनि व्यूह से निकल कर दिशाओं में भर रही है।

भीमसेन प्रधान द्वार का रक्षक कौन है चर ?

चर सिन्धुराज जयद्रथ। व्याघ्र चर्म-मण्डित सोने और रत्नों से बना उनका रथ आकाशगामी सूर्य के रथ से होड़ ले रहा है। सेनापति आचार्य द्रोण उनके दायें अपने रथ में वीरासन मारे बैठे हैं। पर सुना यही गया कि इस द्वार के प्रधान रक्षक जयद्रथ है द्रोण नहीं।

सात्यकी मण्डल-द्वारों के रक्षक कौन हैं ?

चर इस विषय में जितने मुँह उतनी बातें सुनने में आयीं। कर्ण और कृपाचार्य के साथ सुयोधन व्यूह के अन्तिम द्वार पर हैं, या कर्ण दूसरे द्वार पर हैं दोनों बातें सुनी गयीं पर सच क्या है कौन जाने ?

युधिष्ठिर साधु चर ! कुछ और सुना ?

चर इस व्यूह में प्रवेश करने वाला प्राण लेकर लौट नहीं सकेगा। जयद्रथ ने प्रतिज्ञा की है कि अकेले अर्जुन को छोड़कर किसी भी दूसरे रथी को वह व्यूह में घुसने न देगा।

सात्यकी अरे ! यह इतना बल जयद्रथ में कहाँ से आ गया ?

भीमसेन स्वप्न में देवलोक की कोई अप्सरा उसे इतना बल दे गयी होगी।

धृष्टद्युम्न तो अब अप्सराएँ स्वप्न में बल देने लगी ! अच्छा हो स्वप्न माँग किसी अप्सरा को बुलाकर तुम भी ऐसा ही बल माँग लो ! (मन्द हँसी)

भीमसेन (धीरे से) द्रौपदी स्वप्न में भी किसी अप्सरा को मेरे निकट जो आने दे तब न! स्वप्न में भी बस वह अकेली आना चाहेगी। बेचारी अप्सराएँ जिसके नाम से ही भाग चलती हैं। कह दो अपनी बहन से कुछ दया दूसरों पर भी करें। (मन्द हँसी)

चर ठीक है वीरता का भार परिहास से चलता है। संकट में जिसे हँसी न सूझे वह और चाहे जो हो वीर नहीं होता। बस एक बात मुझे और कहनी है।

भीमसेन
धृष्टद्युम्न
सात्यकी } हाँ...हाँ कहो चर! (उत्सुक मुद्रा में सब देखने लगते हैं।)

चर पीठ में बाण मारकर जो पितामह गिराये गये...

युधिष्ठिर हाँ कहो चुप क्यों हो गये! (साँस रोक कर देखते हैं।)

चर इस व्यूह में उसका प्रतिशोध होगा।

भीमसेन किसके साथ...?

चर जो इसमें प्रवेश करे। यमराम का निमन्त्रण जिसे आज मिला हो। सुयोधन से इसकी प्रतिज्ञा आचार्य द्रोण ने की है।

युधिष्ठिर किस बात की प्रतिज्ञा भद्र? (उद्वेग की मुद्रा)

चर आपकी सेना का कोई महारथी इस चक्रव्यूह में आज परलोक जायेगा। आपके पक्ष के किसी एक महारथी का अन्त आज द्रोण करेंगे।

भीमसेन गरजने वाला बादल बरसता नहीं है।

युधिष्ठिर और जो कहीं वह बरसने लगे?

सात्यकी तब प्रलय होगी। प्रलव में मेघ गरजने के साथ बरसते भी हैं।

युधिष्ठिर समर में द्रोणाचार्य प्रलय के किस मेघ से कम है? कौन कहेगा इसे? जाओ चर? और जो सूचना तुम्हें मिले...... (सब की ओर देखकर) तो अर्जुन को लौट आने की सूचना दी जाय?

भीमसेन कभी नहीं किरीटी जिस समय आँखों के संकेत में हमें हीन-पौरुष मानेगा, मैं पृथ्वी में धँस जाना चाहूँगा। अकेले अर्जुन को लड़ना था तो इस सेना की ओर (चारों ओर हाथ घुमा-कर) इन सेनापतियों की क्या आवश्यता थी? एक बार और लाख बार मैं यही कहूँगा कि हम द्रोण के इस व्यूह से वैसे ही टक्कर लें जैसे समुद्र की लहरें तटभूमि से टक्कर लेती है। व्यूह के सात द्वारों की जगह हमारे शस्त्र सत्तर और सात सौ द्वार खोल देंगें।

युधिष्ठिर सबकी यही राय है।

सात्यकी धर्मराज! युद्ध करना है। सुन रहे हैं नन्द और उपनन्द नाम के दोनों नगाड़े शत्रु बजाने लगे। हाथों में धनुष और शरीर में प्राण रहते हम पराजय मान लें? पितामह भीष्म की बाण-शय्या और दोनों पक्ष के इतने वीरों की मृत्यु का फल तब क्या होगा? किस तप से, किस माया से जयद्रथ आज अजेय बन रहा है हम देख तो लें।

धृष्टद्युम्न लाभ और हानि का लेखा वणिक लेते हैं पण्य-वीथियों में। शत्रु के बल और कौशल की चिन्ता मन में जहाँ बैठी, फिर तो वीर की जगह नरक की वह निचली तह होती है

जहाँ सूर्य की एक भी किरण नहीं पहुँचती। अर्जुन के न रहने से वह ब्राह्मण आपको पकड़ लेगा...(सन्देह की मुद्रा )

युधिष्ठिर शिव...शिव...अपने लिए मैं डर रहा हूँ ?

धृष्टद्युम्न उसका काल मैं वहीं खड़ा रहूँगा ? द्रोण के वध के लिए मेरा जन्म हुआ है। आकाशवाणी झूठ न होगी।

चर शङ्कर ने जयद्रथ को कभी वर दिया था ?

भीमसेन (व्यंग्य में) विश्वविजयी बनने का भद्र ! हा...हा...हा... पात्र और अपात्र का विचार भगवान् शङ्कर भी भूल गये ?

युधिष्ठिर भीमसेन! साँस रुक रही है मेरी...और तुम्हें हँसी आ रही है!

भीमसेन धर्मभीरु आप हैं न ! जन्म बीत गया मेरा आपकी साँस रुकते देखते। पर कभी रुकी नहीं। भीष्म का, द्रोण का, कर्ण का आतङ्क तो आपकी साँस में बराबर बना रहा। अब इस जयद्रथ का भय आपके रक्त का रङ्ग बदल कर पीला कर रहा है। पल भर को भी वह समय कब आया जब आप निर्भय थे। धर्म का राजा धरती का राजा नहीं हो सकेगा। ना...ना...हो नहीं सकता यह। आप दिन भर इसी मन्त्रणा-शिविर में अपने सेनापतियों के साथ दोनों हाथ बाँध कर मन्त्रणा करें, नींद आने लगे, चुपचाप यहीं लेट जाइयेगा।

धृष्टद्युम्न हाँ...हाँ...भीमसेन ! (ओठ पर उँगली रखकर चुप रहने का संकेत करता है।)

भीमसेन : शत्रुओं का सिंहनाद नहीं सुन रहे हो तुम ! तुम्हारे कान बहरे हो

गये हैं ? भीष्म-से महासमुद्र को पार कर हम आज डूब रहे हैं गढ़े में ? जयद्रथ और भीष्म में वही अन्तर है जो गढ़े और समुद्र में होता है। धर्मराज के प्रति कहे मेरे शब्दों में अनादर के भाव न देखो।

( गदा उठाकर खड़ा होता है। किसी भीषण संकल्प का भाव उसकी आकृति पर छा जाता है। आगे बढ़कर युधिष्ठिर के सामने सिर झुका कर शिविर-द्वार की ओर बढ़ता है। )

**युधिष्ठिर** मुझ अभागे के आशीर्वाद में जो कुछ बल हो तो मैं कहता हूँ, तुम्हारी विजय हो। शत्रुओं को जीतकर तुम शत्रुञ्जय बनो। पर इस तरह कहीं भी जाने के पहले...कोई भी काम करने के पहले मेरा आदेश न लेकर ..

**भीमसेन** (घूम कर ) तब तो मरने से पहले भी मुझे आपसे आदेश लेना होगा आर्य ! (क्रोध में सर्प-सा सिर हिलाता है। )

**युधिष्ठिर** निश्चय। जब तक मेरा यह अधिकार तुम मुझसे छीन न लो।

**भीमसेन** यही तो दुर्योधन का सब से बड़ा बल है।

**सात्यकी** क्या...क्या...बल है उसका भद्र ?

**भीमसेन** वह जानता है कि धर्मराज इस मिट्टी की धरती पर अमर बन कर रहना चाहते हैं। अपने भाइयों के लिए अपने एक-एक जन के लिए उनके भीतर यही कामना है। (युधिष्ठिर की ओर देख कर ) चक्रव्यूह तोड़ने का आदेश चाहता हूँ मैं।

**युधिष्ठिर** (चौंक कर ) तुम भी इसकी कला जानते हो ?

भीमसेन नहीं। रथ से रथ और हाथी से हाथी मारने की कला मैं जानता हूँ। (एक साथ सब हँस पड़ते हैं) हाँ...हाँ...इस कला से कोई व्यूह टूट जायेगा। जो लोग इस समय हँस रहे हैं वह भी देख लेंगे कि कला और विद्या की चिन्ता वे करते हैं जिनका विश्वास अपनी बाँहों में नहीं होता। राघव समुद्र के इस पार से उस पार तक कैसे जाता है ? हाथियों के दल में सिंह कैसे प्रवेश करता है ? नागों के बीच में गरुड़ कैसे झपटता है ? किस गुरु से सीखते हैं वे अपने कार्य की कला ?

युधिष्ठिर अपनी प्रकृति से...

भीमसेन और मैं...

युधिष्ठिर धनुष, बाण, गदा, परिघ और दूसरे शस्त्र तुम्हारी प्रकृति में नहीं है। हाथ, पैर, दाँत अपनी प्रकृति के इन शस्त्रों से लड़ना होता तो बात दूसरी थी।

भीमसेन तब हम आज हार गये। अभी हम जीवित हैं, हमारे हाथों में शस्त्र भी हैं फिर भी हम हार गये।

**(अभिमन्यु प्रवेश कर द्वार के निकट रुक जाता है। किशोर वय, मोहक रूप, सिंह-सी निर्भय मुद्रा। कन्धे में धनुष, हाथ में भल्ल, कटिबन्ध में खड्ग और पीठ पर तूणीर)**

अभिमन्यु ऐं ! किस तरह हम हार गये ? मझले चाचा क्या कह रहे है यह ? पितामह की आँखों में अश्रु देखकर जान लिया आज कोई अनिष्ट होगा। अनिष्ट की बात यहाँ भी सुन रहा हूँ। युद्ध में मृत्यु का पुण्य भी नहीं मिला हमें और हम हार गये ?

इस लोक के न मिलने पर वह लोक तो मिला होता है। (दायाँ **हाथ ऊपर उठा देता है।)**

युधिष्ठिर द्रोणाचार्य ने आज चक्रव्यूह में अपनी सेना खड़ी की है। तुम्हारे पिता इस समय संसप्तक-युद्ध में पाँच योजन दक्षिण हैं।

अभिमन्यु (साँस रोककर) हाँ तात ! तब ?

युधिष्ठिर चक्रव्यूह-भेदन की कला अर्जुन को छोड़ केवल दो जन और जानते हैं जो इस संकट में सहायक होते। भगवान् कृष्ण और महात्मा प्रद्युम्न...

अभिमन्यु (आगे बढ़कर) आपके प्रताप से आपका यह दास भी वह कला जानता है।

युधिष्ठिर ( विस्मय में ) ऐं वत्स ! तुम जानते हो चक्रव्यूह-भेदन की कला ?

अभिमन्यु शत्रु व्यंग्य कर रहे हैं तात ! सब कुछ बता कर आपकी जिज्ञासा पूरी करने का समय नहीं है। पितामह के यहाँ से आ रहा था, व्यूह के द्वार से जयद्रथ ने कहा···(**क्रोध में काँप उठता है, ललाट और आँखों में रक्त का रंग छा जाता है।)**

भीमसेन तुम्हारा अपमान किया उस उद्धत सिन्धुराज ने...?

अभिमन्यु मेरा अपमान उतना घातक न होता। पर वह बात मुँह से निकालने में लज्जा आ रही है मुझे। कह कर आ रहा हूँ, उसके वरदान का बल अभी देख लूँगा।

युधिष्ठिर शत्रु के व्यवहार पर क्रोध नहीं करते पुत्र ! वीर का धर्म तो शत्रु के प्रति भी शील है। फिर भी उसने कहा क्या ?

अभिमन्यु जानें दें तात ! उसने क्या कहा...युद्ध का शङ्ख फूंकें। आचार्य द्रोण को पता नहीं था कि उनके व्यूह को मैं उसी तरह उड़ाऊँगा जैसे आँधी सेमर की रूई उड़ाती है।

युधिष्ठिर इस युद्ध में तुम्हें भेजने से अनर्थ होगा आज...

अभिमन्यु ना...ना...यह न कहें तात ! हिमालय रसातल में चला जायेगा, संसार से वीर का धर्म उठ जायेगा जो मेरे मोह में आप आज शत्रुओं की जीत मान लें। सत्य कहना जो अपराध न हो तो फिर मैं कहता हूँ, पितामह की बाणशय्या को देख लेने पर जीवन की कामना कौन करेगा ? इच्छामृत्यु जो थे। भगवान् परशुराम के शस्त्र जिन पर निष्फल रहे, यमराज के निमन्त्रण से वे नहीं बचे जब, फिर मेरी या किसी दूसरे की मृत्यु में ऐसा क्या होगा कि...

युधिष्ठिर ऐसी अमंगल बात मुंह से नहीं निकालते बेटा !

अभिमन्यु पितामह ने जिस समय मेरे सिर पर हाथ फेरा उनकी आँखों से आँसू चल पड़े।

भीमसेन अभिमन्यु ! पितामह रो रहे थे ! कारण कुछ जान सके तुम... (साँस रोक लेता है)

अभिमन्यु मैंने पूछा...थोड़ी देर मौन रह कर वे बोल उठे 'जब तक मैं इस बाणशय्या पर हूँ तुम दोनों का मुंह देखना मेरे भाग्य में बना रहे !'

सात्यकी दोनों कौन ?

अभिमन्यु बात यह हुई कि आज भाई लक्ष्मण भी उसी समय पहुँच गये थे। पितामह के दोनों हाथ हम दोनों के सिर पर थे, उनकी

आँखें आधी मुँद गयीं और उनसे आँसू की धार बह चली। उनकी यह दशा देख कर हम दोनों की आँखें जब चार हुईं... हम दोनों काँप रहे थे ?

युधिष्ठिर हे भगवान् ! फिर क्या हुआ ?

अभिमन्यु उनके मुँह से कुछ अस्फुट शब्द निकलते रहे, किसी देवदूत से, पूर्वकाल के किसी ऋषि या पितर से वे कुछ कह रहे हों, जिसे वे देख रहे हों और जो हम दोनों के लिए अदृश्य रहा हो। फिर जैसे चेत में आकर उन्होंने कहा कि आज के युद्ध में अच्छा हो हम दोनों में कोई न लड़े, नहीं तो वे बाणशय्या पर अभी जीवित रहेंगे और कुरुवंश का अन्त हो जायगा।

युधिष्ठिर पाँचाल-कुमार ! अर्जुन के पास सन्देश भेजो ! पितामह की बात अदृश्य के ललाट की लिपि है।

अभिमन्यु संसप्तकों के एक सहस्र हाथियों और एक लाख सेना ! को बिना मारे नहीं लौटेंगे वे। वैतालिक ने उनके इस सकल्प का गीत जो गाया आपने नहीं सुना ?

युधिष्ठिर सुना तो था पुत्र ! पर अब चारा क्या है ? चक्रव्यूह का तोड़ने वाला दूसरा कौन है इस पक्ष में ?

अभिमन्यु माँ के शिविर में...वे जब जहाँ रहीं हैं...उनके शयनकक्ष में भगवान् शङ्कर के चित्र के साथ चक्रव्यूह का चित्र भी मैं नित्य देखकर पलंग से उठता रहा हूँ।

युधिष्ठिर तुम्हारी माँ के शयनकक्ष में यह चित्र कैसे गया ?

अभिमन्यु मेरे प्रसव की पीड़ा माँ को अधिक न हो इसलिए पिता ने अपने हाथ चक्रव्यूह का चित्र बना कर उन्हें दिखाया था।

तब से वह चित्र बराबर उनके शयनकक्ष में, या शिविर में जहाँ कहीं सोयीं बराबर लगा रहता है। उसी चित्र के आधार पर पिता ने अभी परसों रात को मुझे व्यूह-भेदन की कला का ज्ञान दिया। आप नहीं जानते, यहाँ कोई नहीं जानता कि इस व्यूह की कला मैं जानता हूँ पर पितामह जानते हैं।

युधिष्ठिर पितामह जानते हैं वत्स !...किसने कहा उनसे ?

अभिमन्यु कल संध्या-समय तात से उन्होंने पूछा था कि चक्रव्यूह का रहस्य तो अभी वे किसी दूसरे को बता नहीं सके। यह कला वे मुझे बता चुके हैं यह जान कर उन्हें खेद हुआ था। अदृश्य की केवल एक लिपि है तात ! "जन्म लेनेवाले को एक दिन मरना है" इसके आगे अदृश्य भी कुछ नहीं जानता। इस युद्ध के अन्त में धरती को वीर-हीन होना है। पितामह का निश्चित मत है, आप भी इसे अस्वीकार नहीं करेंगे।

युधिष्ठिर हाय ! वत्स ! फिर तुम कैसे जाओगे ? तुम्हारे न रहने पर मेरे कुल का सूर्य डूब जायगा।

अभिमन्यु लक्ष्मण के मरने पर चाचा दुर्योधन की वंश-परम्परा भी मिट जायेगी। पितामह के कहने का यह अर्थ बिजली बन कर दिगन्त में चमक रहा है। गृह-युद्ध का फल यह धरती कब तक भोगे कौन जाने...जो पैदा हुए हैं वे...और जो न पैदा हुए हैं वे भी ? युद्ध के लिए जो आप अभी न चल पड़े तो सिन्धुराज अपने शङ्ख की विजय-ध्वनि में आपकी नींद तोड़ेगा। अभी-अभी कहा उसने मुझे सम्बोधित कर 'धर्मराज को जगा देना। कह देना रात को मद्य का सेवन कम

करें। दो घड़ी दिन चढ़ आया और अभी तक उनकी सेना सो रही है।

भीमसेन यही तो मैं कह रहा था। जयद्रथ का यह अभिमान... (पृथ्वी पर पैर पटकता है)

अभिमन्यु क्रोध और अमर्ष का यह अवसर नहीं है। (धृष्टद्युम्न की ओर देखकर) मामा आप समर का शङ्ख फूंकें। सेना को व्यूह की ओर ले चलें।

युधिष्ठिर कृष्ण और अर्जुन के न रहने से मेरी आँखें इस समय अन्धी हैं। कुछ नहीं सूझता मैं क्या करूं?

अभिमन्यु पिता और मामा दोनों का प्रतिनिधि मैं आपसे चक्रव्यूह तोड़ने का आदेश माँगता हूँ। मुख्य-द्वार से प्रवेश कर व्यूह के शेष छः मण्डलों के छः द्वार पार कर अन्तिम द्वार नाभि-मण्डल तक मुझे कोई रोक न सकेगा। सुमेरु हिल जाय, समुद्र सूख जाय, मध्याह्न में ही सूर्य अस्त हों, पर व्यूह के नाभिमण्डल तक कोई मुझे रोक न सकेगा। शत्रु चाहे इन्द्र, मरुत, वरुण और अग्नि के अंश से लड़ें, फिर भी व्यूह-प्रवेश में मुझे बाधा न होगी। निकलने की विद्या मुझे नहीं आती। मेरे अनिष्ट का समय तब आयेगा जब मैं लौटना चाहूँगा। मेरे पीछे चाचा भीमसेन, मामा धृष्टद्युम्न या महारथी सात्यकी कोई एक भी जो व्यूह में जा सका तब मुझे निकलने की चिन्ता भी न होगी।

भीमसेन बस...बस...हम तीनों उसी मार्ग से प्रवेश करेंगे, जिससे तुम आगे बढ़ोगे। काया का साथ जैसे छाया नहीं छोड़ती, तुम्हारी परछायीं बन कर हम तुम्हारे साथ रहेंगे।

सात्यकी यही होगा (गम्भीर मुद्रा)।

धृष्टद्युम्न साधु भीमसेन ! तुमने चिन्ता का पर्वत हमारे सिर से उतार लिया। आयु की एक साँस भी जब तक हमारी शेष रहेगी, प्राण से प्रिय पार्थनन्दन का अनिष्ट कौन कर सकेगा ?

युधिष्ठिर हाय ! यह सब क्या हो रहा है ? पितामह की आज्ञा का उल्लंघन करोगे वत्स !

अभिमन्यु धर्म की आज्ञा सबसे ऊपर होती है तात ! होनी कब कहाँ टली है कि प्राण के लोभ में समर-धर्म से मुख मोड़ा जाय ? आयु जब पूरी हो जायगी कौन रक्षा करेगा और जब तक वह पूरी नहीं होती मारनेवाला भी कौन है ? उठिए, छोड़िए इस मोह को जो आपके धर्म को चुनौती दे रहा है।

(युधिष्ठिर का हाथ पकड़ कर खींचता है। भीम, सात्यकी एक साथ ही शङ्ख फूंकते हैं। युधिष्ठिर अभिमन्यु का सिर सूंघते हैं।)

युधिष्ठिर जन्म-जन्मान्तरों में, जो कुछ पुण्य मेरे बचे हों, अमोघ कवच बनकर तुम्हारी रक्षा करें। आकाश में जब तक सूर्य और चन्द्र रहें, धरती पर जब तक गंगा रहें, तुम्हारा यश अक्षय रहे।

अभिमन्यु (आनन्द में) आपका आशीर्वाद अमोघ है। तीनों लोक में मेरे समान भाग्यवान् कौन है जिसे धर्मराज अपने श्रीमुख से इतना लाभ दे रहे हैं। आप लोग चलें...मैं अपने रथ पर अभी आता हूँ।

(युधिष्ठिर और अभिमन्यु को छोड़ कर सब का प्रस्थान)

द्रौपदी (प्रवेशकर) तुम आज युद्ध में नहीं जाओगे अभिमन्यु !

अभिमन्यु वीर की मृत्यु किसी एक दिन होती है माता ! कायर नित्य सौ बार मरता है। इन्द्रप्रस्थ के सभा-भवन में चाचा सुयोधन के अपमान का फल यह युद्ध है। भूल न जाओ, तुमने कहा था, 'अन्धे का पुत्र अन्धा होता है,'...घर आये अतिथि के प्रति ये तुम्हारे शब्द थे। चक्रव्यूह की रचना उसी दिन हो गयी माता ! अब चिन्ता करने से क्या होगा ? पितामह की बाणशय्या भी उसी दिन रची गयी थी।

द्रौपदी मेरी जीभ काट लो पुत्र ! पर आज युद्ध में न जाओ। जिस जीभ से यह बात निकली थी उसे काट लो..हाँ काट लो उसे पर आज के समर में तुम न जाओ।

अभिमन्यु मेरे प्राण का मोह तुम्हें हो रहा है ? (ऊपर आकाश की ओर देखने लगता है।)

द्रौपदी पुत्र का मोह प्रकृति का सबसे बडा आकषण है पुत्र !

अभिमन्यु इसमें तुम्हारा स्वार्थ है, परमार्थ नहीं। ऐसा ही था तो तुमने भू-मण्डल के उन वीरों को क्यों मरने दिया जो वीरता के मानदण्ड थे जिनके बल से धरा की धीरता थी ? लाख-लाख वीरों के मर जाने पर अब तुम्हें मेरा मोह क्यों हो रहा है ? क्या उनकी माताएँ नहीं थी ? सगे-सम्बन्धी नहीं थे उनके ? उनकी नारियाँ नहीं थी, उनके हृदय में प्रेम नहीं था...या उनकी आँखों में आँसू नहीं थे ?

युधिष्ठिर देव का दोष है यह सब वत्स ! द्रौपदी का नहीं।

अभिमन्यु तब कह दें इनसे तात ! देव के विधान में यह बाधक न हों।

द्रौपदी मेरे फूटे भाग्य का दोष है यह। जो बात पापी कौरव कहते वही बात अब अपना पुत्र कह रहा है। (कण्ठ भर आता है।)

अभिमन्यु (सत्य की परिभाषा सब के लिए समान है। अपने सत्य से अलग जब शत्रु का सत्य देखा जाता है तभी माता वसुन्धरा पर युद्ध के बादल बरसते हैं। अनीति से अनीति नहीं रुकती। पितामह की मर्यादा के साथ ही कुरुओं की मर्यादा मिट गयी। नारी के वेश में शिखण्डी को रथ पर बैठा कर उनके साथ जो छल किया गया...उसके फल-भोग का अधिकारी सबसे अधिक मैं हूँ।

युधिष्ठिर कौरवों के पाप भी देखो बेटा!

अभिमन्यु अपने पक्ष के पाप से ही मुझे घृणा हो रही है। उनके पक्ष के पाप देख कर उस भार को क्यों बढ़ाऊँ! कुल तीन जन यहाँ हैं। बात इन्हीं तीन तक सीमित रहे।

युधिष्ठिर तुम्हारे इस विराग के कारण तब पितामह स्वयं हैं।

अभिमन्यु च.....च्च धरती रसातल चली जायेगी तात! पितामह के धर्म में सन्देह न करें। पीठ में बाण मारकर गिरानेवाले के प्रति भी उनके हृदय का स्नेह कम नहीं हुआ। होनहार ऐसी थी कि वे इस गृह-युद्ध को न रोक सके। यह युद्ध न होता तो वे अमर रहते। सृष्टि के धर्म के विरुद्ध होता यह, इसीलिए यह युद्ध होकर रहा और उनकी मृत्यु का अवसर आया।

द्रौपदी (भरे कण्ठ से) पुत्रवधू ने रात भयानक स्वप्न देखा है।

तुषार-दग्ध-कमलिनी-सी, भोर के चन्द्रमा-सी उसकी दशा देख कर छाती फट रही है।

(युधिष्ठिर काँपने लगते हैं)

अभिमन्यु सुन चुका हूँ मैं। समझा कर...उसके भीतर का भय निकाल कर मैं गया था पितामह के पास। अपनी मृत्यु या अपने प्रिय की मृत्यु के स्वप्न तो इस युद्ध में अब महारथी देखने लगे हैं। वह बेचारी अबला है। वह भी किशोरी और फिर उसके ये दिन......

युधिष्ठिर कैसे दिन...अभिमन्यु ! तुम कुछ छिपा रहे हो...? (उत्सुक होकर देखते हैं।)

अभिमन्यु (द्रौपदी को संकेत कर) माता बता देंगी आपको, अपने से सब कुछ नहीं कहा जा सकेगा।

द्रौपदी हम अभागों की नाव तुमसे पार लगी तो अब...

अभिमन्यु मुझे यहाँ से जा लेने दो तब कहो ! चलूँ तात ! माँ से आशीर्वाद लूँ और पत्नी से विजय का तिलक...

द्रौपदी (हाथ जोड़कर) न...उसके पास नहीं......उसकी आँखों से गंगा-जमुना बह रही हैं।

अभिमन्यु इसीलिए मेरा वहाँ जाना और उचित है। उत्तरीय से उसके आँसू पोंछकर, मेरे प्रति उसका जो धर्म है उसका बोध करा कर...उसके हाथ से ललाट पर तिलक लेकर युद्ध में जाना है मुझे। उसे रोती छोड़कर जाने का अर्थ होगा युद्ध में पराजित होना। मेरे जय की शक्ति ही है तुम्हारी पुत्र-वधू......

**(अभिमन्यु का प्रस्थान। नेपथ्य में युद्ध के बाजों और शंखध्वनि के साथ धनुष की टंकार और प्रतिद्वन्द्वी**

वीरों की ललकार सुनायी पड़ती है। चारण, बन्दी और वैतालिक वीरों की प्रशस्ति गा रहे हैं।)

युधिष्ठिर कुल-वृद्धि की बात कहना देवी ?

द्रौपदी आर्यपुत्र की कुल-लक्ष्मी गर्भवती है।

युधिष्ठिर तब अभी हमारे पुण्य शेष हैं देवी! भगवान् करते अभिमन्यु के पुत्र का मुख देख कर कुल के भविष्य से संतुष्ट होता। विराट-पुत्री ने स्वप्न क्या देखा ?

द्रौपदी वह न पूछिए। कहने के पहले ही जीभ गिर जाना चाहेगी। विश्वास करें हृदय चाहे पत्थर भी हो जाय फिर भी वह बात मुँह से न निकलेगी।

युधिष्ठिर हूँ, तब इसका निवारण होना चाहिए था।

द्रौपदी ज्योतिषी से पूछ कर स्वप्न के फल का निर्णय करा कर राजवधू को स्नान और दान करा कर आ रही हूँ। उसके स्वप्न का फल घोर अमंगल है।

युधिष्ठिर जो कुछ भोग जीवन भर भोगने पड़े उनका अन्त अभी नहीं आया ? कितने पाप कितने जन्मों के अभी शेष हैं। पर अब शङ्कर का भरोसा है। अभिमन्यु ठीक कह रहा था होनी टलती नहीं। चक्रव्यूह-भेदन की कला यह बालक जानता है, इसका पता मुझे नहीं था।

द्रौपदी अभिमन्यु के जन्म के पहले ही आर्यपुत्र ने इस व्यूह का चित्र बहन सुभद्रा को दिखाया था। इसके भेदन की बातें बता रहे थे तभी इसका जन्म हो गया। परसों रात को इसकी कला जब वे बताने लगे, इतनी जल्दी सीख गया अभिमन्यु कि उन्हें विस्मय हुआ और वे हँस कर कहने लगे...

युधिष्ठिर क्या कहा किरीटी ने ?

द्रौपदी यही कि जैसे माता के गर्भ में ही अभिमन्यु ने सुन कर सब उसी समय सीख लिया। केवल प्रवेश की कला अभी यह जानता है। निकलने वाली विद्या इसे अभी नहीं मिली।

युधिष्ठिर चिन्ता की बात यही है देवी ! पर अभिमन्यु को लाख मनाये मानेगा जो नहीं। हमारे भाग्य में अब जो लिखा हो। देखना उसकी रण-यात्रा के समय पुत्र-वधू रो न पड़े। वीर का सबसे बड़ा अमंगल पत्नी का स्वप्न नहीं, उसकी आँखों का आँसू होता है।

———

# दृश्य परिवर्तन

[अभिमन्यु के शिविर का अंतरंग। वीर वेश में अभिमन्यु खड़ा है। उत्तरा का दायाँ हाथ उसके कन्धे पर है और सिर उसकी छाती पर टिका हुआ है। अभिमन्यु का एक हाथ उसके सिर पर और दूसरा हाथ उसकी पीठ पर है। शिविर द्वार पर वैतालिक गा रहा है।]

गीत

हे बाल अरुण ! हे बालवीर !
अर्जुन-सुत हे ! हे समर-धीर !
अरि-दल कांपे सुन सिंहनाद,
जब फूंको शङ्ख धरा डोले।
जय हे अजेय ! जय हे अजेय !

अभिमन्यु प्रिये ! ( स्नेह के स्वर में )

उत्तरा ( भरे कण्ठ से ) हृदय को वज्र बना रही हूँ मैं...

अभिमन्यु हर्ष और आनन्द में जो तुमने मुझे विदा नहीं किया..भय और शोक में डूबी जो तुम्हारी आकृति बनी रही तो किस बल से हृदय की किस निष्ठा और कर्त्तव्य के किस तेज से मैं शत्रुओं के सामने टिकूंगा ? तुम्हारे दुःख की छाया मेरे हृदय को सब

ओर से घेर कर, रोम-रोम में विष-सी फैल कर, धनुष की गति को क्या न घेर लेगी ? किस वीर-रमणी ने कब पति के धर्म में बाधा दी है प्रिये ! यह क्या कह रही हो तुम ?

उत्तरा स्वप्न भर सुन लो नाथ ! चाहे जो करो । इस लोक में तुम्हारे चरणों की दासी उस...

अभिमन्यु उस लोक में भी मेरी संगिनी रहेगी । उसके भाग्य से ईर्ष्या देवबालाएँ करेंगी । वीर-वनिता की महिमा वीर से कहीं अधिक बढ़कर है । मेरे विजय की मूल-शक्ति बनना है तुम्हें, फिर भय कैसे ? (उसे दोनों हाथों में बाँधकर ) विजय-तिलक और आरती से भाग्यवान् करो मुझे ।

उत्तरा स्वप्न भर सुन लो प्रभु !

अभिमन्यु हा...हा...हा...हा...स्वप्न की बात कहकर...अमंगल का भाव न भरो मेरे भीतर । युद्ध के लिए मैं अब प्रतिश्रुत हूँ । इतनी दूर बढ़ आया हूँ अब...जहाँ से पीछे हटना सम्भव नहीं है । सुन नहीं रही हो इस शिविर के द्वार पर बन्दी तुम्हारे सेवक की प्रशस्ति गा रहे हैं । (उसका हाथ अपनी दायीं बाँह पर टिका कर) रोमांच हो रहा है मुझे...इस गीत के एक-एक शब्द पर । मन और देह की जो गति तुम्हें अङ्क में भर लेने से होती है वही गति युद्ध के इस आवाहन में भी है । वही सुख, वही रस और वही आनन्द मिल रहा है मुझे इस समय ।

उत्तरा (कदली-पत्र-सी काँप कर) तब मुझे भी अपने रथ पर ले चलो ! कैकेयी दशरथ के साथ युद्ध में गयी थीं ।

अभिमन्यु वह युग चला गया। वीरों के रथ पर अब देवियाँ नहीं बैठतीं युद्ध में। रानी कैकेयी गर्भवती न थीं तब! (हँसकर) मेरे भावी पुत्र की माता! अपने उदर में मेरे तेज की रक्षा करो! पति के प्रेम का फल पुत्र होता है। इस देश की देवियों के इस सनातन धर्म से मुख न मोड़ो। हाँ, अब हँस दो। ऐसी हँसी प्रिये! जो मुझे अमर बना दे। जिसके प्रकाश में भाग्य का कोना-कोना चमक उठे! (उसके कण्ठ पर उँगलियाँ ऐसे घुमाता है जैसे वीणा के दण्ड पर फेर रहा हो।)

उत्तरा (उसका हाथ पकड़ती हुई) गुदगुदी उपजा कर हँसा रहे हो मुझे, लो हँस दिया। (उसके दाँत चमक उठते हैं पर हँसी की ध्वनि नहीं निकलती।)

अभिमन्यु अभी नहीं हँसी तुम...

उत्तरा तो फिर किस तरह...कोई सुनेगा तो इस समय क्या सोचेगा। यह अभागिनी हँस रही है ऐसे संकट में। इसका हृदय पत्थर से, लोहे से, वज्र से भी कठोर है। पिछली पहर रात से अब तक के आँसू झूठे थे तब!

अभिमन्यु झूठे थे प्रिय! मैं निकट जो नहीं था। अपने धर्म में, पिता के प्रताप में, मामा श्रीकृष्ण के विजय-वैभव में, जो तुम्हारा विश्वास हो; धर्मराज की निष्ठा में, चाचा भीमसेन की गदा में और अपने इस सेवक की बाँहों में जो तुम्हें सन्देह न हो तो दूर फेंको मन की इस हीनता को। हँसो ऐसी हँसी जिसका रंग मेरे शरीर और शस्त्रों पर चढ़कर शत्रुओं के लिए असह्य हो! कोई शत्रु साहस से मेरी ओर देख भी न सके। जो न सम्भव हो मेरे शस्त्रों से वह तुम अपनी हँसी से कर डालो।

उत्तरा हाय नाथ ! तब मै मर क्यों न गयी। (गहरी साँस)

अभिमन्यु मेरी प्रिया और मेरे पुत्र की माता बनने का अवसर तब तुम्हें नहीं मिलता। तुम्हारे आसन पर यहाँ दूसरी होती।

उत्तरा (क्रोध में भवें टेढ़ी कर) कौन होती वह ?

अभिमन्यु (मन्द हँसी) मर कर तुम जिसे वह अवसर देती !

उत्तरा जिस आसन के लिए केवल मेरा जन्म हुआ...कौन है ऐसी दूसरी जो उसकी ओर देख भी लेती। रम्भा, तिलोत्तमा, उर्वशी, शची की भी आँख फोड़ देती मैं तब...

अभिमन्यु ओ ! हो ! और स्वप्न के भय में रोने भी लगती।

उत्तरा कहाँ रो रही हूँ भला...

अभिमन्यु तब फिर हँसो...

(अभिमन्यु के मुख की ओर एकटक देखती हुई हँस पड़ती है।)

अभिमन्यु अब ठीक। सिंह की प्रिया को कब कहाँ भय होता है यही तो नहीं सोच सका मैं ? जब वह स्वप्न देखा, आ जाती मेरे शिविर में, मैं तभी हँसा दिये होता तुम्हें। जगत् के सारे संकट हंसी की एक लहर में बह जाते।

सुभद्रा (प्रवेश कर) पत्नी के प्रति भी वीर का कुछ धर्म होता है पुत्र !

उत्तरा ना...ना...अब कुछ न कहो माँ ! आर्यपुत्र युद्ध में जायेंगे।

सुभद्रा क्या...क्या कह रही हो बेटी ?

उत्तरा स्वप्न का भय मुझे तभी तक रहा जब तक ये निकट न आये। अब मुझे कोई भय नहीं है।

सुभद्रा तुमने क्या जादू कर दिया इस पर पुत्र ? पिछले पहर रात से अब तक यह क्या रही और अब क्या हो गयी ?

अभिमन्यु प्रिया को मेरे पौरुष और विक्रम में विश्वास है माता ! तुम्हारे पुण्य में और पिता के प्रताप में। गाण्डीव पर जब तक प्रत्यञ्चा है मेरा अनिष्ट करते यमराज भी डरेगा।

सुभद्रा चक्रव्यूह में प्रवेश करने की बात तुम जानते हो पुत्र ! उसमें से निकलने की कला तुम्हें नहीं आती। प्रवेश की बात जब तक तुम्हारे तात मुझे सुनाते रहे, तुम्हारा जन्म हो गया !

अभिमन्यु हाँ, माँ ! परसों रात को वही चित्र दिखाकर वे मुझे प्रवेश का रहस्य फिर बताते रहे।

सुभद्रा निकलने का भी...

अभिमन्यु नहीं माँ ! धनुष की डोरी में प्राण बाँधकर झूठ नहीं बोलूंगा, सो भी तुमसे...अपनी दयामयी जननी से ! निकलने की कला मैं ..ब तक नहीं जानता !

सुभद्रा नहीं चाहिए मुझे यह राज्य ! राज्य के मोह में धर्मराज पुत्र को भी पाँसे पर रखने चले हैं, नहीं होने दूँगी मैं।

द्रौपदी (प्रवेश कर) न रोको बहन ! शत्रु जान गये चक्रव्यूह तोड़ने तुम्हारा पुत्र आ रहा है। मझले आर्यपुत्र, सात्यकी और धृष्टद्युम्न छाया बनकर पुत्र के साथ रहेंगे।

सुभद्रा और तुम यह सब मान कर यहाँ आ रही हो ? माता का हृदय तो ऐसा नहीं होता ?

द्रौपदी विजयी पुत्र की कामना कौन माता नहीं करती बहन ! कह क्या रही हो तुम ? हमारे पक्ष में जो भार किसी से न चला उसे तुम्हारा पुत्र उठा रहा है यह सुनकर शत्रु दाँतों तले उँगली दबा रहे हैं । द्रोणाचार्य की मति मारी गयी है और सूत-पुत्र कर्ण चिन्ता के समुद्र में डूब रहा है ।

सुभद्रा और जो कहीं......(हाथों में सिर थाम कर भूमि पर बैठ जाती है ।)

अभिमन्यु हा...हा...हा...वीर का अनिष्ट कभी नहीं होता माता ! पराजय का भय जिस हृदय में कभी आता नहीं उसका अनिष्ट ? वीरगति को हार नहीं कहते । सूर्य-मण्डल भेद कर अक्षय स्वर्ग का भोग धरती के भोगों के ऊपर बराबर रहा है । उठो, आशीर्वाद दो मुझे, तुम्हारा पुण्य मेरा कवच बने । (सुभद्रा को दोनों हाथों से उठाता है ।)

सुभद्रा तो तुम नहीं मानोगे ? (कण्ठ भर आता है ।)

अभिमन्यु मेरी इस सोलह वर्ष की आयु का, इस शरीर का, यौवन और विक्रम का सबसे बड़ा धर्म इस समय क्या है ? जिस ओर मेरा रथ चलेगा, वैरियों के बीच में राजपथ बनेगा माँ ! राजपथ...

सुभद्रा तो फिर यही होनी है ।

उत्तरा और जिस पर कभी किसी का वश न चला माँ !...विधि की रेख कब किससे मिटी ?

सुभद्रा तब तुम्हारे रूप और प्रेम का आकर्षण फिर क्या बहू !

उत्तरा पति के धर्म में बाधा देने से वह गति होगी मेरी। मेरे रूप और प्रेम की ईर्ष्या इस समय देवबालाएँ करेंगी। सोचेंगी वे—उनका जन्म इस धरती पर होता और पति के धर्म की मूल-शक्ति वे बन पातीं। (**अभिमन्यु की ओर एकटक देखने लगती है**)

अभिमन्यु सच कह रही हो प्रिये! तुम्हारे रूप के आग्रह में आज वह करूँगा जिसकी कहानी तब तक चलेगी...

उत्तरा हूँ...कब तक?

अभिमन्यु जब तक यह धरती रहेगी......आकाश रहेगा......आकाश में सूर्यदेव रहेंगे और धरती पर रहेगा वीर का धर्म।

उत्तरा बस अब कुछ नहीं नाथ! तुम्हारे यश-शरीर की दासी मैं तब भी रहूँगी। मृत्यु के मिटाये मेरा नाम तब न मिटेगा।

सुभद्रा (द्रौपदी से) बहन क्या हो गया है इसे? (**विस्मय की मुद्रा**)

द्रौपदी (उत्तरा को छाती से लगाकर) पति के धर्म-गौरव का बोध! हमारी सेना के सब से बड़े वीर की पत्नी बनने का भाग्य...यह भाग्य हम दोनों में आज किसी को नहीं है।

अभिमन्यु हैं...हैं...क्या कहती हो माँ...! तात की तुलना में मुझे खड़ी कर रही हो? सूर्य और नक्षत्र का अन्तर न भूल जाओ। युद्ध में शङ्कर को तुष्ट करनेवाले गाण्डीवधारी लोक-विजयी परन्तप के कानों में जब यह बात पड़ेगी...!

द्रौपदी वे तुम्हें हृदय से लगाकर सिर सूँघकर कहेंगे 'पुत्र! तुम मुझसे अधिक वीर हो।' कौन पिता अपने से अधिक उत्कर्ष पुत्र का नहीं चाहता? आयु में, बल में, विक्रम

और यश में पिता से आगे निकल जाय पुत्र यह कामना पिता के हृदय को उसी समय रंग देती है जब वह पहले-पहल नवजात पुत्र का मुँह देखता है। अपने से अधिक मोह इसीलिए अपनी परम्परा का होता है और इसीलिए देवों की परम्परा नहीं है और वे अमर भी हैं।

**अभिमन्यु** रोमांच हो आया मुझे माँ ! तुम्हारी इन बातों से...यह बात मुझे पहले क्यों न सूझी ?

**सुभद्रा** महादेव की दया से जिस दिन तुम पुत्र का मुँह देख लोगे यह बात तुम्हें भी सूझ जायगी। (उत्तरा मुस्करा कर मुँह फेर लेती है )

**द्रौपदी** नारी के सबसे बड़े भाग्य में लाज नहीं करते बेटी......अरे ! नहीं......नहीं......भूल रही हूँ मैं, नारी की लाज का सबसे बड़ा अवसर यही है जब कि उसके जीवन का सब से मोहक फल पुत्र मिलनेवाला हो।

**अभिमन्यु** यह अवसर पिता के लजाने का होता है, प्रिया क्यों लजा रही हैं भला ?

**सुभद्रा** तुम बडे नटखट हो। मारे लाज के पानी-पानी हो रही है मेरी बेटी !

**उत्तरा** हृदय के और सभी भाव न जाने कहाँ लोप हो गये हैं माँ ! आर्यपुत्र अपने पुत्र का मुँह देखें, आप लोग इस समय यही आशीर्वाद दें। कुलदेव सहायक हों। तब तक मैं तिलक और आरती की सामग्री ले आऊँ।

**द्रौपदी** अरे प्रतिहारी ?

प्रतिहारी आयी महादेवी ! (प्रतिहारी का प्रवेश)

उत्तरा यह कार्य आज मुझे करना है। अपने हाथों चन्दन और कस्तूरी घिसना है।

द्रौपदी तिलक तुम्हीं दोगी। यह अधिकार धर्म से केवल तुम्हारा है। कादम्बिनी सामग्री ले आये।

उत्तरा सब कुछ मैं ही करूँ। मेरी हथेलियों का रंग आर्यपुत्र के ललाट पर चन्दन के लेप में मिल जाय ? (कादम्बिनी की ओर देख कर) चलो तुम मेरे साथ। जल, तिलक-पात्र और सब जुटा दो।

कादम्बिनी जैसी आज्ञा देवी !

(उत्तरा और कादम्बिनी का प्रस्थान। दूर पर युद्ध की ध्वनि भयानक हो उठती है। बन्दी वीरों की प्रशस्ति गा रहे हैं। शिविर-द्वार पर वैतालिक ओजस्वी स्वर में गा उठता है—)

**हिले धरा, गगन हिले, हिले विपक्ष-वाहिनी,**
**अजेय पार्थ-पुत्र हे ! दिगन्द । गूंज से हिले।**
**तिमिरघटा विपक्ष की मिटे दिनेश-से चलो,**
**चलो अजेय वीर हे ! चलो समर-सुधीर हे !**
**पिनाकपाणि ! तुम चलो कि पाशपाणि ! तुम चलो।**

अभिमन्यु साधु भद्र ! साधु !

वैतालिक (नेपथ्य में) यह दास आज कृतार्थ है विजयी ?

अभिमन्यु युद्ध के पहले ही वैतालिक !

वैतालिक (नेपथ्य में) हाँ सौम्य ! विजय तुम्हारे पीछे चलेगी ?

ग्रभिमन्यु सुमित्र से कहो रथ ले ग्राये ।

वैतालिक (नेपथ्य में) जो ग्राज्ञा देव !

द्रौपदी इस गीत से रोमांच मुझे हो ग्राया । वीर की क्या दशा होगी ? ग्ररे तुम्हारे रोम खड़े हो गये हैं पुत्र !

ग्रभिमन्यु रण के ग्रावाहन में प्रिया के ग्रावाहन का रस मिलता है माता ! सच तो यह है कि इस रस की तुलना किसी दूसरे रस से हो नहीं सकती । भीतर का रस जितना बाहर हो सका..... एक-एक साँस में रम रहा है......उसे तुम न जानोगी ?

द्रौपदी ग्ररे ! तुम्हारी ग्राकृति पर यह सब क्या हो रहा है ?

ग्रभिमन्यु ( हँसकर ) क्या देख रही हो ?

द्रौपदी कुछ ऐसा जो शब्दों में न उतरेगा । दिव्य लोक के वे भाव जो जाने, देखे न गये ।

ग्रभिमन्यु रुद्र-नृत्य, प्रलय के ठीक पूर्व शङ्कर जो नृत्य करते हैं ! ग्रौर...

सुभद्रा (भय में) ग्रौर क्या...

ग्रभिमन्यु 'यम-नृत्य...

सुभद्रा यह क्या होता है पुत्रक ! (देह काँप रही है)

ग्रभिमन्यु सब कुछ कह देने पर तुम भय से ग्रचेत हो उठोगी माँ ! मेरे मुख पर इन नृत्यों के पूर्व भाव हैं, जिनका दर्शन केवल समर-भूमि में होता है । वैतालिक के गीत से ये भाव उमड़ पड़े । ग्रच्छा हुग्रा जो प्रिया ने इन भावों को न देखा ।

द्रौपदी (भय से) नहीं तो क्या होता ?

अभिमन्यु माता को सारे अधिकार मिले हैं। धरती सब कुछ देखती है, ठीक उसी तरह माता भी।

सुभद्रा और पत्नी ?

अभिमन्यु पत्नी पुरुष के संहारक भाव नहीं देख सकती। नहीं तो फिर सृष्टि का धर्म मिट जायेगा। सृजन की गति रुक जायेगी। इस विषय की अब एक बात नहीं।

सुभद्रा तुम्हें जन्म देकर भी अभी मैं इतना नहीं जानती ?

अभिमन्यु कह तो दिया तुम वह सब जानती हो जो यह धरती जानती है। (हँस पड़ता है)

द्रौपदी तुम्हारे पीछे धृष्टद्युम्न, सात्यकी और मझले आर्यपुत्र रहेंगे बेटा !

अभिमन्यु न भी रहें तो क्या ? आकाश में सूर्य के साथ कौन रहता है ? अपने बल का बखान माता-पिता के सामने करना अधर्म कहते हैं। यह अवसर तुम्हारे उत्सव मनाने का है। तुम्हारा पुत्र तुम्हारे पुण्य से विजय पायेगा अपने बल से नहीं। शङ्का और सन्देह से तुम मुझे निर्बल करोगी। तुम्हारी यह दशा जो कहीं तुम्हारी पुत्र-वधू देख लेगी तो क्या होगा ? सम्हालो जल्दी नहीं तो तिलक-पात्र उसके हाथ से धरती पर गिरकर अमंगल का कारण बनेगा।

**( स्वर्णपात्र में तिलक और आरती लेकर उत्तरा का प्रवेश )**

उत्तरा (द्रौपदी के निकट रुक कर) हाँ, लो माँ...

द्रौपदी यह भाग्य तुम्हारा है बेटी? तिलक, आरती करो। हम दोनों इष्टदेव का ध्यान करें।

(उत्तरा तिलक-पात्र बायें हाथ में लेकर दाँयें हाथ की अनामिका से अभिमन्यु के ललाट पर तिलक लगाती है फिर आरती-पात्र उठाकर उसके सिर के चारों ओर पाँच पाँच बार घुमाती है। अभिमन्यु सिर झुकाकर भाव-विभोर मुद्रा में खड़ा है। द्रौपदी-सुभद्रा दोनों हाथ जोड़े ध्यान-मग्न हैं। उत्तरा तिलक-पात्र नीचे रखकर बाँहें अभिमन्यु के कण्ठ में डाल देती है।)

उत्तरा इस बन्धन में जन्म-जन्म बंधना है आर्यपुत्र!

अभिमन्यु हाँ...प्रिये! दोनों लोक बँधे हैं मेरे इस बन्धन में...

उत्तरा धन्य हुई यह दासी नाथ! (अपने आँचल से अभिमन्यु के मुख का स्वेद पोंछने लगती है।)

सुभद्रा वैसी ही बनी रहो बेटी! तुम दोनों को जी भर देख लूँ। आँखों का फल ले लूँ। भगवान सौ आँख दिये होते!

द्रौपदी (हँसकर) यही सुख तब भी मिलता बहन! हमारे लिए इसके आगे सुख की कोई दूसरी सीमा नहीं है। दो आँखें... पुत्र और पुत्र-वधू दोनों हमारी दोनों आँखें हैं। सौ आँखों में यह सुख नहीं मिलता।

अभिमन्यु रथ आ गया। तो अब...

उत्तरा दासी हर्ष से प्रभु को विदा कर रही है। (साँस में वेग भर जाता है।)

अभिमन्यु सुमित्र !

सुमित्र (प्रवेश कर) आज्ञा देव !

अभिमन्यु घोड़ों को उचित पोषण दे दिया भद्र ! घृत, मधु...आज के युद्ध में एक साथ कितने रथियों की टक्कर होगी।

सुमित्र घोड़े आश्वस्त हैं...

अभिमन्यु शस्त्र सभी रख लिये ?

सुमित्र महारथी के रथ पर जितने शस्त्रों का विधान है।

अभिमन्यु फिर चलो मैं अभी आया।

(सुमित्र का प्रस्थान)

द्रौपदी हम दोनों शिविर-द्वार तक चले। (सुभद्रा को संकेत करती है।)

उत्तरा मैं भी साथ...

द्रौपदी पति के साथ बेटी ! भवानी जैसे शङ्कर को विदा देती हैं .. समझी !

(द्रौपदी और सुभद्रा का प्रस्थान)

उत्तरा सोलह वर्ष की आयु में...

अभिमन्यु (उसे बाँहों में बाँधकर) हाँ तब...

उत्तरा हम दोनों सोलहवें वर्ष में हैं...

अभिमन्यु हाँ...हाँ...तब...

उत्तरा जो न होना था...

अभिमन्यु खुल कर कहो प्रिये !

उत्तरा पर अब क्या ?

अभिमन्यु क्या बात है ? इस समय दुराव कर रही हो ?

उत्तरा पति-पत्नी दोनों की आयु जब सोलह वर्षों की हो (नीचे देखने लगती है ।)

अभिमन्यु लो, फिर चुप हो गयीं । (उसके सिर पर हाथ फेरते हुए)

उत्तरा दोनों के सोलहवें वर्ष की सन्तान अशुभ होती है ।

अभिमन्यु क्या...क्या तो हम दोनों की सन्तान हमारे लिए अशुभ होगी । अच्छा...इस शुभ सन्देश ने मुझे अमर कर दिया । मैं तो जानता ही नहीं था ।

उत्तरा लोग कहते हैं यही । आगे की बात भगवान् जाने ।

अभिमन्यु जो बीत गया उसकी चिन्ता नहीं करते । भूल जाओ मुझे... भूल जाओ अपने उदर के उस पुत्र को । हम दोनों से बड़ा इस समय तुम्हारा धर्म है । वीर-पत्नी का आचरण करो प्रिये ! इस दशा में छोड़कर तुम्हें नहीं जाऊँगा मैं युद्ध में ।

---

उत्तरा कुछ नहीं...देखो मैं हँस रही हूँ (मन्द हँसी)

अभिमन्यु अपने प्रति तुम्हारे स्नेह की शपथ दे रहा हूँ मैं...

उत्तरा अब किस लिए ? मैं हर्ष से विदा कर रही हूँ...(भय के स्वर में)

अभिमन्यु जो कहीं देव वाम हुआ तो तुम घुल-घुल कर मरोगी नहीं...अपने पुत्र में मेरा अंश देखकर तुम अपने अभाव की पूर्ति करोगी । स्वीकार कर लो यह तब मैं रण की निर्भय यात्रा करूँ । बोलो ! अपने पुत्र में मैं अब अमर रहूँगा ।

उत्तरा (उसकी ओर एक-टक देखकर) स्वीकार करती हूँ मैं... प्रभु का यह बन्धन भी मुझसे न टूटे...भगवान् बल दें मैं इसी आदेश को अपना सम्बल बनाऊँ।

अभिमन्यु अब (अपनी छाती पर हाथ रखकर) इस हृदय का भार उतर गया। तुम्हारी निष्ठा से शत्रुओं को हरा कर मैं फिर तुम्हारी सेवा में आऊँगा।

उत्तरा यही हो नाथ! दासी एक आसन पर बैठकर शङ्कर भगवान् से यही याचना करेगी। बस अब तो प्रसन्न हो।

अभिमन्यु कितने जन्मों के पुण्य से तुम्हें पाया, नहीं जानता। तुम्हारे सेवक का अनिष्ट जिस क्षण होगा, यह धरती पाताल को चली जायगी।

उत्तरा हर जन्म में मैं साथ रही हूँ, मैं जानती हूँ यह। आगे भी साथ रहूँगी। जितने दिन पुत्र को इस देह बिना न चलेगा बस उतने ही दिन मेरा धरती से नाता रहेगा।

अभिमन्यु और आगे?

उत्तरा आगे के लिए छूट...(आँचल पसार कर) इतनी भीख देते जाना!

अभिमन्यु ठीक है दे रहा हूँ यह भीख मैं। प्रिया को सब ओर से सुरक्षित रखना मेरा धर्म है, इस ओर से भी।

उत्तरा हाँ, जिससे अगले जन्म में भी मुझे ये चरण मिलें।

अभिमन्यु उस जन्म में मैं पच्चीस का रहूँगा और तब तुम सोलह की रहोगी, क्यों?

उत्तरा (मन्द हँसी) हाँ, तब यह भूल न होगी जो सोलह में हो गयी। (दोनों हँस पड़ते हैं।)

अभिमन्यु आओ अब चलें। रथ पर से तुम्हारा मुख देखकर यात्रा करूँ।

उत्तरा शिविर-द्वार पर खड़ी रहूँगी मैं...

(उत्तरा शिविर-द्वार पर खड़ी रहती है। अभिमन्यु उसका सिर ललाट से छूकर निकल जाता है। युद्ध के बाजों की ध्वनि, वैतालिक का गीत और शंख की ध्वनि सुनायी पड़ती है। फिर रथ के चलने की ध्वनि होती है। उत्तरा मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ी रहती है। उसके दायें हाथ का स्वर्णवलय धरती पर गिर पड़ता है।)

सुभद्रा (प्रवेश कर) हे भगवान्! (उत्तरा का कन्धा हिलाकर) बेटी!

उत्तरा (जैसे चेत में आकर) हाँ, माँ...

सुभद्रा क्या किया तुमने यह...(झुककर वलय उठाती है।)

उत्तरा हाँ...क्या? (भय की मुद्रा)

सुभद्रा तुम्हारे हाथ का वलय कैसे गिरा?

उत्तरा (वलय की ओर देखकर दायें हाथ की कलाई पकड़ लेती है।)

सुभद्रा यहाँ आना बहन? फूटे भाग्य को क्या करूँ?

द्रौपदी (प्रवेश कर) हाँ...क्या कहने लगी?

सुभद्रा तुम्हारी पुत्र-वधू का वलय यहाँ धरती पर गिरा था।

द्रौपदी (हाथ में वलय लेकर) क्यों पगली यह क्या किया?

उत्तरा मैं कुछ नहीं जानती माँ ! कैसे गिरा यह, किस तरह ?

द्रौपदी तुम्हें पता नहीं बेटी ?

उत्तरा हाय माता ! स्वामी को रण में भेजकर मैं झूठ बोलूंगी ?

द्रौपदी तब यह अमंगल की सूचना है। चलो, शिव की पूजा करो पुत्री ! वही रक्षक हैं।

उत्तरा समर में अमंगल कभी नहीं होता माँ...

द्रौपदी हाय ! इसे उन्माद हो रहा है।

उत्तरा अभी-अभी कह गये वे। वीरगति का जो मोहक चित्र वे खींच गये मेरे हृदय पर...अक्षय स्वर्ग में अक्षय यौवन...जहाँ न जरा हैं न मरण...वसन्त कभी बीतता ही नहीं...अनुराग के रंग में जहाँ दिशाएं डूबी हैं।

द्रौपदी (उसके मुँह पर हाथ रख कर) चुप रहो। सम्हालो बहन ! इसे मूर्छा आ गयी।

**(द्रौपदी उसे अङ्क में लिये बैठ जाती है। सुभद्रा अपने आँचल से वायु करती है।)**

उतरा (तन्द्रा में) यौवन...वसन्त...

सुभद्रा हाय ! वधू...

उतरा ऐं क्या कह रही हो माता ! उत्सव मनाने को कह गये वे और तुम हाय-हाय कर रही हो ?

सुभद्रा देखो बहन कैसे देख रही है यह...

उतरा अक्षय यौवन और वसन्त की कामना कर रही हूं मैं। पंख लग गये हैं मुझे, उड़कर जाने भर की देर है। पुत्र को जब इस देह से काम न रहेगा, चली जाऊंगी मैं उड़ कर वहाँ।

द्रौपदी पुत्र तुम्हें इसका अधिकार दे गया। यही कह रही हो।

उत्तरा हाँ, जी होता है वीणा बजाऊँ, नृत्य-करूँ। तात ने वृहन्नला के वेश में जिस कला की शिक्षा मुझे दी थी।

(उठ कर शिविर के दूसरे भाग में निकल जाती है। सुभद्रा और द्रौपदी खोयी-सी वहीं बैठी रहती हैं। वीणा की ध्वनि सुनायी पड़ती है। दावाग्नि में कोकिला की कूक-सी उसके कण्ठ की रागिनी आकाश में गूंज उठती है।)

द्रौपदी उन्माद का रूप है यह बहन। इसके बालक को जब तक इसकी देह से काम रहेगा तभी तक यह रहेगी। पर नहीं, हमारा पुत्र विजयी होकर लौटेगा! चलो हम शङ्कर का पार्थिव पूजन कर लें।

सुभद्रा मुझे कुछ नहीं सूझता...सब ओर घना गहरा अन्धकार...

द्रौपदी कृष्ण के रहते...आर्यपुत्र के रहते, हम अमंगल की चिन्ता करें? कुछ नहीं। चलो उठो। (सुभद्रा का हाथ पकड़कर उठाती है।)

(परदा गिरता है।)

———

# दूसरा अङ्क

[रणभूमि । युद्ध के बाजे तूर्य, भेरी, शङ्ख बज रहे हैं। रथ के चकों की चिनगारी सामने उड़ रही है। हाथी, घोड़े ऐसे बोल रहे हैं कि आकाश फट रहा हो।]

अभिमन्यु (नेपथ्य में) सुमित्र ! रथ रोक दो।

सुमित्र (नेपथ्य में) सौम्य ! शत्रु का विश्वास...

अभिमन्यु (पैदल आगे बढ़ते हुए) डरो न भद्र ! (धर्म की इस धरती में मेरा शत्रु कोई नहीं है...समझ रहे हो ? घर के कोने में शत्रुता को टिकाकर वीर समर में चल पड़ता है। धर्म की साधना करते हैं हम इस भूमि में। बैर, द्रोह यहाँ पहुँचते-पहुँचते भूल जाते हैं। विपक्षी के आलिंगन में वही रस मिलता है, जिसे तुम प्रिया के आलिंगन में पाते होंगे। इस भूमि में कोई विपक्षी से कभी पराजित नहीं होता जो वह अपने मन के द्रोह और क्रोध से न हारे।)

सुमित्र कम से कम यह चन्द्रहास ही ले लें (तलवार आगे बढ़ाकर) कुमार लक्ष्मण के हाथ में काल सर्प-सा चन्द्रहास लहरा रहा है।

अभिमन्यु पर रथ से पहले वे ही उतरे। अपनी भूल का परिहार मैं अब उनसे निरस्त्र मिल कर करूंगा।

लक्ष्मण (प्रवेश कर) जय हो भाई ! अपनी आँखों का विश्वास नहीं हो रहा है मुझे। कान से सुनी बातों का विश्वास नहीं हुआ

तो तुम्हारे रास्ते में आ गया। और अब मन तो यही करता है कि आँखों का विश्वास न करूँ।

(अभिमन्यु आगे बढ़कर अपने दोनों हाथ उसके कन्धे पर रख देता है। दोनों की आयु प्रायः एक ही है, सोलह वर्ष। ललाट, आँख, नाक सब कुछ जैसे परस्पर प्रतिरूप। सिर से नीचे लटकते काक पक्ष कन्धे पर हिल रहे हैं। पद्म और पद्म-राग के जैसे दोनों के बने हों। अभिमन्यु दो अंगुल लक्ष्मण से जैसे बड़ा है।

अभिमन्यु रण में विलम्ब हो रहा है भाई! तुम तो जैसे स्वप्न देख रहे हो? (उसके कन्धे हिला देता है।)

लक्ष्मण तो तुम सचमुच चक्रव्यूह तोड़ने चले हो?

अभिमन्यु हाँ...तो...

लक्ष्मण और पितामह ने क्या कहा था...

अभिमन्यु (उन्मुक्त हँसी) हा...हा ..हा...

लक्ष्मण हैं...हैं...(विस्मय की मुद्रा)

अभिमन्यु मनुष्य की सारी कामनाएँ जिस दिन पूरी हो जायेंगी यह धरती स्वर्ग हो जायगी भद्र! पर इस धरती को स्वर्ग नहीं होना है तुम भी जानते हो। जीव कर्म के बन्धन जितने विषम होते हैं, वीर-कर्म के बन्धन भी उतने ही विषम हैं। पितामह भी मनुष्य हैं, वे मनुष्यों में देवता हैं यही कहोगे। पर वे मनुष्य हैं पहले और फिर पीछे देवता।

लक्ष्मण रो पड़े थे वे...पितामह के आँसू तुम न भूलोगे?

अभिमन्यु कामना जब पूरी नहीं होती मनुष्य रोता है और जब पूरी हो जाती है तब भी रोता है। देवता नहीं रोते, उनमें कामना भी नहीं होती।

लक्ष्मण रहने दो यह वेदान्त। नहीं जा सकोगे तुम इस युद्ध में...

अभिमन्यु वेदान्त का जन्म इसी भूमि में...समर की भूमि में ही हुआ था भाई! पण्डित चाहे जो कहें। वीर के बाणों पर चढ़ कर वेदान्त के सूत्र उड़े थे...धनुष की टङ्कार में प्रणव का नाद गूंजा था। अवसर नहीं है...नहीं तो मैं कह देता यह सब कैसे हुआ? अपनी अन्तिम साँस तक पितामह हम दोनों की जीवन की कामना करते हैं; भय है उन्हें, कहीं यह युद्ध की अग्नि हम किशोरों को भी न भस्म करे, जिनके सारे कर्म अभी शेष हैं। उनकी भावी पीढ़ी उन्हीं के सामने न मिटे। इसी कामना में वे रो पड़े। उनकी यह कामना पूरी कैसे होगी? उनके ललाट में विधाता ने जो रेख खींची, उसमें तो उनके कुल का नाश तभी तक है जब तक उनकी साँसें चल रही हैं।

लक्ष्मण हम लोग न जायँ आज के युद्ध में या जब तक यह युद्ध चले हम न लड़ें। उनकी कामना पूरी होगी।

अभिमन्यु आज एक दिन मुझे लड़ने दो। तुम न आना। कल से मैं न लड़ूंगा।

लक्ष्मण और आज ही कुछ हो जाय? (उत्सुक मुद्रा)

अभिमन्यु (उसके कन्धे से हाथ खींचकर) हाँ ..जो कुछ हो जाय (गम्भीर मुद्रा) कोई बात नहीं भाई! तुम तो रहोगे, तुम्हारे रूप में पितामह की आधी कामना रहेगी।

लक्ष्मण साधु ! साधु (एकटक उसकी ओर देखकर)

अभिमन्यु अरे ! इस तरह क्यों देख रहे हो ?

लक्ष्मण (गम्भीर मुद्रा) देख रहा हूँ कामना के कितने खण्ड हो सकेंगे। बड़े भोले हो तुम ! कामना हो तो पूरी। खण्ड न हो उसका......ना......ना......नहीं......नहीं...... तब वह......हाँ तो तुम न मानोगे......

अभिमन्यु इस चक्रव्यूह को जो मैं न तोड़ सका तो आज मेरे पक्ष की हार होगी। देव, दैत्य, यक्ष और गन्धर्व-विजयी तात के रहते, त्रिलोकीपति मातुल कृष्ण के रहते !

लक्ष्मण उस शूरसेन को तुम त्रिलोकीपति कहने लगे.....जिसकी द्वारिका को हमारी सेना का एक ही मत्त कुञ्जर दबा कर समुद्र में धँसा सकेगा।

अभिमन्यु चुप...चुप...उनकी निन्दा की बात हम नहीं सुनते। किसी भूमि से उनका मोह नहीं हैं इसी अर्थ में त्रिलोकीपति हैं वे ! (कानों पर हाथ रखकर) एक शब्द भी नहीं कहना है तुम्हें...

लक्ष्मण अच्छी बात, पर तुम क्यों तोड़ने चले इस व्यूह को ? कोई दूसरा तोड़े...

अभिमन्यु मेरे पक्ष में यह विद्या किसी दूसरे को नहीं आती।

लक्ष्मण (विस्मय में) किसी दूसरे को नहीं ?

अभिमन्यु किसी को नहीं। चाचा भीमसेन, मातुल धृष्टद्युम्न और यदुवीर सात्यकी मेरे पीछे रहेगे।

लक्ष्मण इन लोगों में किसी को नहीं आती और तुम्हें इसी आयु में कैसे आ गयी ?

अभिमन्यु आयु की चिन्ता विद्या नहीं करती।

(द्रोणाचार्य का प्रवेश। शीश और दाढ़ के दो भाग बाल श्वेत। कन्धे में धनुष, पीठ पर तूणीर। जैसे वीर रस स्वयं देह धर कर खड़ा हो।)

द्रोणाचार्य तुम लौट जाओ वत्स ? यह व्यूह तुम्हारे लिए नहीं बना।

अभिमन्यु (सिर झुकाकर दोनों हाथ जोड़कर) तब किसके लिए आचार्य ? कौन है वह महाभाग जिसके स्वागत का उत्सव आपने इस रूप में किया ? आप जानते थे इस व्यूह की कला हमारे पक्ष में केवल तात अर्जुन जानते हैं। फिर जब आपने इसकी रचना कर दी, आपके सन्तोष के लिए मैं आ गया। तात को इतनी दूर संसप्तक युद्ध में भेजकर आप मुझ पर दया दिखा रहे हैं जिसका अर्थ है हमारे पक्ष की पराजय। गज-दल की गर्जन सिंह का बालक भी नहीं सहता। किसी पाण्डव के निधन को आपने यह व्यूह रच दिया। महारथी कैसा होता है इसका बोध मुझे नहीं हैं, रथ पर चढ़कर आया हूँ। आज के युद्ध में आप मुझे जो स्थान देंगे सिर झुका कर मैं उसे स्वीकार करूंगा।

द्रोणाचार्य भय है वत्स ! व्यूह में घुस कर जो तुम न निकल सके। निकलने की विधि पचीस संवत्सर के बाद ही लोग जा· इस अवधि तक शिष्य बन कर जो नहीं रहता और पहले ही वीर बन कर रणभूमि में ऊधम मचाता है उसे यह विधि कभी

नहीं आती, गणित की गति में देह की गति ढालनी पड़ती है इसके लिए...देह का बल इसमें काम नहीं देता।

अभिमन्यु तात आपके शिष्य हैं, पर मैं उनका शिष्य हूँ, आपसे मुझे यह विद्या नहीं सीखनी है।

द्रोणाचार्य निकलने की विधि जानते हो तुम, यही इतना पूछना है मुझे।

अभिमन्यु उनकी विद्या का रहस्य मैं आपसे न कहूँगा। पूछ लेंगे आचार्य कभी उन्हीं से...

द्रोणाचार्य जो कहीं इसमें देर हो गयी...

अभिमन्यु इसकी चिन्ता मुझे नहीं है। मेघ के भय से सूर्य अपना कार्य नहीं रोकता ?

(ऊपर आकाश की ओर देखने लगता है।)

द्रोणाचार्य ( विस्मय से देखकर ) मेरी ओर देखो ?

अभिमन्यु यह समय अब सूर्य से निष्ठा और पराक्रम लेने का है आचार्य ? आपकी ओर देखने का नहीं। मेरे संकल्प में अब भगवान् भुवन-भास्कर का बल हो।

लक्ष्मण तब व्यूह के द्वार पर तुम्हें पहले मुझसे लड़ना पड़ेगा।

अभिमन्यु जब देख लूंगा व्यूह के बाहर नहीं निकल सकता। यम-वाहन के कण्ठ की घण्टी जब मेरे कानों में सुन पड़ेगी तब मैं तुमसे समर कर तुम्हारे साथ ही सूर्य-मण्डल को पार करूंगा। इसके पहले नहीं बन्धु ? पितामह की कामना जब तक बनी

रहे। प्रणाम आचार्य ! आपका सेवक व्यूह से टकराने चल पड़ा...नदी पर्वत फोड़कर जैसे अपना मार्ग बना लेती है...

(अभिमन्यु का प्रस्थान। द्रोणाचार्य विस्मय में उधर देखते रहते हैं। लक्ष्मण कभी द्रोणाचार्य की ओर और कभी अभिमन्यु की ओर देखता है। राजचिह्न अंकित शिरस्त्राण और दायीं भुजा में अंगद पहने वीर-वेश में धनुष, तूणीर, भल्ल लिये सुयोधन का प्रवेश)

सुयोधन अब क्या होगा आचार्य !

द्रोणाचार्य (जैसे ध्यान तोड़कर) हाँ...कहाँ क्या होगा ?

सुयोधन आप कहते थे अर्जुन को छोड़कर इस व्यूह की कला कोई नहीं जानता।

द्रोणाचार्य सोलह वर्ष की आयु में जब से यह धरती है यह किसी को नहीं आयी। दाशरथि राम भगवान् थे और यदुवंशी कृष्ण भी अब भगवान् कहे जा रहे हैं। इन दो को छोड़कर किसी तीसरे को यह कला नहीं आयी। देवव्रत ने इसे बीस की आयु में जाना था और इसी आयु में परशुराम ने भी। सोलह वर्ष की आयु में अभिमन्यु इस कला को जान गया इसका विश्वास मुझे नहीं होता। हो सकता है कि प्रवेश की विधि यह जानता हो पर...

सुयोधन (उत्सुक होकर) हाँ...क्या ? आगे की बात आप छोड़ गये।

द्रोणाचार्य लो वह भी सुन लो। उससे तुम्हारा कोई हित न सधेगा।

निकलने की विधि यह न जानता होगा। अर्जुन ने इसे यह विद्या देने में जल्दी की। आगे की भगवान् जाने।

**सुयोधन** (लक्ष्मण से) तुम्हें विश्वास नहीं होता था पुत्र ?

**लक्ष्मण** हाँ...तात !...पितामह ने हम दोनों से कहा था कि हम युद्ध में तब तक न पड़ें जब तक उनकी अन्तिम साँस नहीं टूटती।

**सुयोधन** तो फिर यह...

**लक्ष्मण** छोड़ दें तात ! इस वितर्क को पितामह की कामना पूरी होती तो फिर यह गृह-कलह क्यों होता ? धनुष की टङ्कार में प्रणव का नाद गूंजा था, बाणों पर चढ़कर वेदान्त के सूत्र उड़े थे, क्या-क्या कह गये भाई अभिमन्यु...उन शब्दों में क्या मन्त्र था कि देह के एक-एक रोये खड़े हो गये।

**द्रोणाचार्य** ऐसा कहा इस अर्जुन-पुत्र ने वत्स ! (विस्मय की मुद्रा)

**लक्ष्मण** हाँ आचार्य ! तब वे जैसे किसी दूसरे लोक में थे, जहाँ न यह धरती थी न यह आकाश। उस लोक के विधि-विधान दूसरे थे, नियम-बन्धन दूसरे थे।

**द्रोणाचार्य** सावधान हो जाओ कुरुराज ! धनुष की टङ्कार में प्रणव का नाद सुनने वाला, बाणों की गति में वेदान्त के सूत्रों को देखने वाला, सुभद्रा-पुत्र वीरों में विस्मय है। जो सोचा न होगा, जिसकी कल्पना न की होगी, जो सुना भी न होगा, आज सब देखने को मिलेगा। देख लिया तुमने, उसके ललाट से सूर्य की किरणे फूट रही हैं। धनुष की डोरी में आज वह अपना प्राण बाँधकर चला है।

सुयोधन शत्रु-पक्ष की आप बराबर स्तुति करते हैं। पहले अर्जुन की करते थे आज उसके पुत्र की।

द्रोणाचार्य सूर्य इसकी चिन्ता नहीं करता कि कौन उसकी स्तुति करता है और कौन नहीं। सच्चा वीर वही है जो अपने शत्रु के गुण को स्वीकार करे। दम्भ करने का स्वभाव कायर का है और वीर अपने विनय में भी आगे हैं।

जयद्रथ (प्रवेश कर) प्रणाम आचार्य! शङ्कर के वरदान से मैं आज अजेय हूँ। अर्जुन को छोड़कर मेरे सामने आज कोई दूसरा टिक नहीं सकता..आँधी के आगे रुई का जैसे पता नहीं चलता...शत्रुओं का पता नहीं चलेगा। आप मुस्करा रहे हैं। तपस्वी होकर तप की महिमा में आपको शङ्का है। आप यहीं रहें। देखें मेरे रहते व्यूह-द्वार में कौन प्रवेश करता है?

द्रोणाचार्य सूर्य को तुम नित्य डूबते देखते हो सिन्धुराज?

जयद्रथ हाँ......देखता हूँ सन्ध्या के समय जब सूर्य डूबेगा...हो सकता है तभी मैं भी डूब जाऊं, पर जब तक सूर्य में तेज रहेगा ..मेरा तेज शत्रु न सह पायेंगे। आज के युद्ध के आप केवल दर्शक बनें, मैं यही कहने आया हूँ।

द्रोणाचार्य सुन रहे हो! (**सुयोधन को संकेत कर**) सिन्धुराज आज तुम्हारी सेना के सेनापति बन रहे हैं। इस पद पर इनके अभिषेक का समय तो अब नहीं है, हाँ चाहो तो मेरे शिर का शिरस्त्राण इन्हें देकर सेनापति का गौरव दे सकते हो। तब तुम्हारी सेना में ये वैसे ही दीखेंगे जैसे देव-सेना में कार्तिकेय देख पड़ते हैं।

जयद्रथ — शङ्कर भगवान् का वर लेकर अब कोई दूसरी कामना मेरे भीतर नहीं है आचार्य ! उस वरदान-सा अमोघ आपका शिरस्त्राण नहीं है ! भगवान् ने एक अर्जुन को छोड़कर शेष सभी पाण्डवों को जीतने का वरदान मुझे दिया था ।

द्रोणाचार्य — शिव की तपस्या तुमने कब की ?

जयद्रथ — द्रौपदी का हरण मैंने पाण्डवों के वनवास-काल में किया था आप सुन चुके होंगे ।

द्रोणाचार्य — हाँ...भीम ने तुम्हें हरा कर बाँध लिया था ।

जयद्रथ — बस, उसी अपमान के प्रतिकार के लिए आपके सेवक ने शिव की दारुण तपस्या की थी । इस देह में जब केवल नसों का जाल रह गया, किसी अंग में तिल भर भी मांस जब नहीं बचा, भूतनाथ प्रकट हुए ।

द्रोणाचार्य — हाँ...तब...

जयद्रथ — देवाधिदेव ने वर माँगने को कहा...

द्रोणाचार्य — तपस्या से सब सम्भव है सिन्धुराज...तब तुमने वर माँगा ।

जयद्रथ — पाण्डवों को जीत लेने का वर मैंने माँगा ।

द्रोणाचार्य — और फिर भगवान् ने तुम्हें कृतार्थ किया । पर यह बात अब तक छिपी क्यों रही ? तुम्हारी शक्ति से पाण्डव अब तक यमलोक में होते; तपस्वी देवव्रत की सेज बाणों की न होती, धरती के इन्द्र तब अकेले कुरुराज सुयोधन होते । बहुत पहले कहनी थी यह बात जयद्रथ ! पर अब तो देर हो गयी ।

जयद्रथ — ( प्रस्थान करते हुए ) विपक्ष की सारी सेना मैं जीत सकता हूँ पर केवल अर्जुन को नहीं ।

द्रोणाचार्य अच्छा, तो अर्जुन शङ्कर का तुमसे बड़ा भक्त है...ठीक है अर्जुन इस समय यहाँ से पाँच योजन दूर है, तुम्हारे वरदान का समय इसीलिये आज आ गया है।

सुयोधन पाण्डव-पक्ष के किसी महारथी के वध की आपकी प्रतिज्ञा भी आज पूरी होगी।

द्रोणाचार्य यह प्रतिज्ञा मैं नहीं करता कुरुराज! और न तो मैं यह व्यूह बनाता जो कहीं...

सुयोधन जयद्रथ के वरदान का पता होता आपको...

द्रोणाचार्य जयद्रथ का वरदान तभी तक है जब तक अर्जुन नहीं है। बालक अभिमन्यु को इस व्यूह की कला ज्ञात है जो यह जानता तो इस व्यूह की रचना नहीं करता।

सुयोधन शत्रुओं के हित के लिए आचार्य?

द्रोणाचार्य अग्नि के अक्षरों में इस युद्ध का अन्त देख रहा हूँ मैं, जिसमें न तो तुम्हारे पिता के कुल का हित है और न तो पाण्डु कुल का। अभिमन्यु का अन्त मेरे यश का कलंक होगा और उसी के साथ पाण्डु के कुल का भी अन्त होगा।

सुयोधन मेरे कुल का भी अन्त आप देख रहे हैं?

द्रोणाचार्य कह दो अपने पुत्र कुमार लक्ष्मण से आज के युद्ध में न जायँ।

लक्ष्मण तब पितामह की आँखों से जो सबेरे जल बहा उसका अर्थ यही था कि दोनों कुल का अन्त आज ही है।

द्रोणाचार्य सृष्टि के विस्मय देवव्रत भी आज रो पड़े थे?

लक्ष्मण उनकी आँखों से जल चला था...रोना कहें या न कहें उसे ?'

द्रोणाचार्य तुम दोनों के रण में न जाने की कामना उनकी थी। अभिमन्यु उससे विमुख होकर व्यूह तोड़ने चला है...पर तुम तो वही न करोगे।

लक्ष्मण कैसे कहूँ...कब क्या होगा ?

सुयोधन तुम शिविर में चलो पुत्र ! अभिमन्यु पितामह की इच्छा के विरुद्ध युद्ध में नहीं जायेगा, तुम जो कहते थे, जिसे अपनी आँखों से देखने तुम आये...कान की सुनी बात पर जब तुम्हें विश्वास न हुआ...तुम्हें नहीं रहना है यहाँ अब...चले जाओ तुम शिविर में माता के पास।

लक्ष्मण अभिमन्यु को वहाँ पहले न जाने दूंगा।

सुयोधन (उद्वेग में) कहाँ नहीं जाने दोगे ?

लक्ष्मण सूर्य-मण्डल के उस पार जो अक्षय स्वर्ग है।

सुयोधन क्या कह रहे हो ? इसी आयु में ?

लक्ष्मण इस युद्ध में धर्म के सारे जोड़ टूट चुके हैं तात ! इस युद्ध में ही धर्म को नया होना है। स्वर्ग का अधिकार आप बड़ों से पहले हम छोटों को मिल रहा है। स्वर्ग जाने की आयु अब यही रहेगी जो हम दोनों की है। सोलह वर्ष पूरे होते हमारा लोक बदल जायेगा।

द्रोणाचार्य (सुयोधन से) कुमार के इस कथन का कोई उत्तर हमारे पास नहीं है भद्र ! होता तब तो हम युद्ध रोक सके होते, नहीं था इसीलिए तो धरती की प्यास रक्त से बुझ रही है। ग्यारह

दिन हो गये यही क्रम चल रहा है। वीरों के मूर्धन्य देवव्रत बाण-शय्या पर हैं। अब आगे जो न हो जाय !

सुयोधन पिता और पुत्र के बीच व्यवस्था आप न दें आचार्य !

लक्ष्मण जीवन का मोह छोड़कर समर की शपथ जिस दिन ली गयी, व्यवस्था उसी दिन बनी थी तात !

सुयोधन मृत्यु के शीश पर चरण धर कर चलने की शपथ धर्म की विधि से सब ने ली थी। पर जब जिसके लिए इसका अवसर आये।

लक्ष्मण मेरे लिए वह अवसर आज ही है।

सुयोधन (उद्वेग में) है...है ऐसी अशुभ बात इस समय...फिर इस युद्ध में हमारी विजय का फल क्या होगा ? कौन भोगेगा कुरुभूमि और...

लक्ष्मण (विराग की हँसी) किसी ने अभी इस भूमि का भोग नहीं किया। यह सब भ्रम है। सब का भोग यह धरती अपने करती रही है। सदा के लिए इसने किसी को स्वीकार नहीं किया।

सुयोधन भीमसेन से भी कठोर आचरण हो रहा है तुम्हारा। शङ्कर के त्रिशूल की चोट भी इससे अधिक न होगी। पिता के सामने पुत्र ने कभी मृत्यु की कामना नहीं की, हाँ, जब से यह सृष्टि है यह बात न सुनी गयी।

लक्ष्मण मृत्यु का समय और स्थान दोनों निश्चित हैं...कल रात को आप कह रहे थे, जन्म के पहले वह स्थान भी निश्चित हो

जाता है और वह समय भी। फिर उसे कौन रोक लेगा ? अज्ञान की भंवर में आप क्यों पड़ रहे हैं ? आयु जहाँ पूरी हो जायेगी, धरती फोड़ कर काल-सर्प डस लेगा।

द्रोणाचार्य अभिमन्यु के पीछे पाण्डवरथियों ने व्यूह पर धावा बोल दिया।

(कई शङ्ख एक साथ बज उठते हैं। वीरों की ललकार सुनायी पड़ती है। हाथी चिग्घाड़ मारते हैं।)

सुयोधन (उधर ही देखते हुए) आचार्य ! जयद्रथ तो सचमुच शिव बन गया है। महासमुद्र की लहरों-से शत्रु जैसे तट के पर्वत से टकरा कर छितरा रहे हैं।

लक्ष्मण मेघ में बिजली—से प्रवेश कर गये भाई व्यूह में...

सुयोधन (भय में) क्या कहा..कौन...

लक्ष्मण भाई अभिमन्यु का रथ व्यूह के भीतर निकल गया, नहीं रोक सके सिन्धुराज उन्हें।

सुयोधन भीमसेन और धृष्टद्युम्न भी उसी के पीछे !

द्रोणाचार्य जयद्रथ के अंग-अंग से रुद्र तेज फूट रहा है। अब किसी की गति नहीं है उनके सामने। भीमसेन, सात्यकी, धृष्टद्युम्न हथेली में प्राण लेकर प्रयत्न कर रहे हैं पर किसी की नहीं चलती उसके सामने।

सुयोधन अभिमन्यु इन तीनों से बली है तब...वह कैसे जा सका ?

द्रोणाचार्य अर्जुन का अंश जो है उसमें...'आत्मा वै जायते पुत्रः'...अर्जुन और उसके अंशरूप अभिमन्यु को छोड़ जयद्रथ आज त्रिलोक-विजयी है उसके वरदान का यही अर्थ है।

सुयोधन जयद्रथ पर बड़ा भार आ पड़ा है। अकेले इतने महारथियों के साथ वह जूझ रहा है।

द्रोणाचार्य दर्शक बन कर केवल युद्ध देखने की बात तुम्हारे सामने वह कह गया। उसका कहना भी सच है। आज तो केवल दो उसके सामने टिक सकते हैं।

सुयोधन अर्जुन और अभिमन्यु...यही दो।

द्रोणाचार्य पिता-पुत्र दो नही होते भद्र ! अर्जुन और शङ्कर। कोई देवता भी जयद्रथ की आँख में आज देखने का साहस न करेगा। फिर भी उसकी सहायता को मैं जा रहा हूँ, पर एक बात तुम्हें न भूले।

सुयोधन आचार्य का आदेश दास के सिर-आँखों पर रहेगा।

द्रोणाचार्य अभिमन्यु पर मेरे शस्त्र न चलेंगे। यह अधर्म मुझसे न होगा।

सुयोधन और जो वह कहीं हमारी सारी सेना को समाप्त कर दे।

द्रोणाचार्य जो हो...उसके हाथ अपने वध की कामना मैं करूँगा पर अपने हाथ उसके वध की नहीं। बालक अभिमन्यु मेरा प्रति-द्वन्द्वी बने यह गौरव मैं उसे न दूँगा।

सुयोधन आप ही मेरे सेनापति हैं। सार्थवाह के रहते पोत समुद्र में डूबेगा ?

द्रोणाचार्य पोत न डूबे इसलिये मैं इसके शिखर पर खड़ा रहूँगा। अर्जुन-पुत्र के सिर पर जिस क्षण काल नाचने लगेगा, उसका विवेक छूट जायेगा और तब वह, मृत्यु के पूर्व जो उन्माद होता है

उसमें पकड़कर अपने शस्त्र का लक्ष्य मुझे बनायेगा। उसके उस शस्त्र को काट कर तुम्हारे प्रति मेरा जो धर्म है, उसकी रक्षा मैं करूँगा। सार्थवाह के रहते पोत कभी नहीं डूबता।

सुयोधन शत्रुओं का छल आप कैसे भूल गये ? शिखण्डी की कमल-पत्र-सी लम्बी नुकीली आँखें, जिसमें काजल की रेख दोनों ओर कान छू रही थी...उसकी नागिन-सी लहराती वेणी, छाती पर झूमने वाला उसका वह वासुकी की कंचुकी-सा चन्द्रहार उसका वह रंगीन उत्तरीय और अन्तरीय, यह सब भूलकर आप किस धर्म की बात कर रहे हैं ?

द्रोणाचार्य अर्जुन के रथ पर नारी-वेश में शिखण्डी को बैठाकर, उनके साथ जो छल किया गया...अबला को भर आँख न देखना जिस महापुरुष के धर्म की कसौटी जन्म भर रही हो उसने जब देखा कि उसका धर्म तोड़ने को अर्जुन के रथ पर नारी बैठी है, उसने प्राण का मोह छोड़ कर भी धर्म बचा लिया यह मैं जानता हूँ। अपनी आँखों देखा था, मारे घृणा के शस्त्र फेंक कर शत्रु की ओर पीठ फेर कर वह रथ में सिर झुका कर बैठ गये और तब उनकी पीठ में जो बाण मारे गये वे उनकी शय्या बने हैं।

सुयोधन तब आप अभिमन्यु के शोक में उन्हें क्यों न भस्म करें ?

द्रोणाचार्य यह व्यूह तुम्हारे शत्रुओं के इसी पाप का परिणाम है। इसके बाहर अब अभिमन्यु का शव जायेगा। निकलने की कला वह नहीं जानता। मेरा एक भी शस्त्र उस पर नहीं चलेगा, फिर भी उसकी रक्षा नहीं है। अभी अभी इस व्यूह के निकट जाने से मैं उसे मना करता रहा। दैव की गति है भद्र ! यह।

जिसकी हर मुद्रा और हर भाव-भंगी में काल का निमन्त्रण नाच रहा था, हर साँस में जिसकी मृत्यु की लय गूँज रही थी; उसे अब कौन बचायेगा ? तुम राजकुमारों के अस्त्रगुरु बनने से अच्छा रहता भीख माँगकर अपना योगक्षेम चलाना। धनुर्वेद की साधना इस अभागे ब्राह्मण ने इसलिए की थी भद्र ! इस प्रलय के मूल में ब्राह्मण की शस्त्र-विद्या है। एकलव्य का अँगूठा काटने के पहले मैंने अपना अँगूठा क्यों न काट डाला।

सुयोधन त्राहि आचार्य ! आपके ललाट से, आँखों से विराग की लौ निकल रही है। नहीं देखा जाता मुझसे आपका यह कराल रूप !

द्रोणाचार्य ( लक्ष्मण से ) कुमार ! तुम आज विश्राम करो ! बाणशय्या पर पितामह की कामना...

लक्ष्मण सृष्टि की सर्व प्रधान कामना से जन्म भर बचकर इस अन्त समय में उनको किसी कामना में बाँधना क्या अच्छा होगा ?

सुयोधन मान जाओ पुत्र !

लक्ष्मण भाई अभिमन्यु जब यमराज के महिष की घण्टी सुनेंगे, मेरे साथ युद्ध करेंगे, इसके पहले नहीं। अभी कह कर गये वे।

सुयोधन भाई नहीं...वह तुम्हारा शत्रु है।

लक्ष्मण इस पुण्य क्षेत्र में भी कोई किसी का शत्रु है ? ना...ना...न कहें यह बात...वीर धर्म के सब से मोहक फल समर-भूमि में तब कैसे मिलते हैं ? जब यहाँ भी शत्रु का भाव बना रहे !

सुयोधन अभिमन्यु का जादू इस पर भी चढ़ गया है आचार्य ! अब मैं क्या करूँ !

लक्ष्मण आपको कुछ नहीं करना है तात ! काल अपना कार्य करता चला जा रहा है। पितामह की बाण-शय्या काल-कर्म की पताका बन कर तब तक उड़ती रहेगी, जब तक यह धरती रहेगी। जब लोग हमें भूल जायेंगे कहाँ थी यह बाणशय्या ? कोई दिन आयेगा जब लोग की मेधा इसी की खोज करेगी। जब यह भूमि जल में डूबी होगी और सूर्यग्रहण के पर्व पर जब लोग उसी जल में अपने धर्म का संस्कार करेंगे।

द्रोणाचार्य किसने कहा तुमसे यह सब कुमार ! (विस्मय की मुद्रा)

लक्ष्मण पितामह के श्रीमुख से आज सबेरे आगत और अनागत की जो वाणी निकली......गन्धमादन की गुहा से या किसी दिव्यलोक से वह ध्वनि आ रही थी। हम दोनों जैसे मन्त्र के वश में, इस धरती से बहुत दूर किसी ऐसे लोक में जा चुके थे, जहाँ से फिर लौटना नहीं होता। जहाँ पहुँच जाने पर इस धरती के आकर्षण का मोह नहीं रहता।

द्रोणाचार्य धरती का आकर्षण केवल मोह नहीं है कुमार ! इसका गुरुतर सत्य है वह, जिसके बिना (चारों ओर हाथ घुमाकर) इसी असीम शून्य में वह कभी बिखर गयी होगी और तब तुम्हारे पितामह भी न होते दूसरों की बात कौन कहे। धरती से छूट निकलने की कामना को विवेक नहीं कहते। जिसका जितना अधिक अनुराग है इसके आकर्षण में उतना ही अधिक वह विवेकी है।

लक्ष्मण ठीक है आचार्य ! चेष्टा करूँगा मैं कि आज के युद्ध में न आऊँ। माता के अन्चल में सिर डाल सो जाने की चेष्टा करूँगा। अन्तक की इस लीलाभूमि में भी चाहूँगा कि कमल बन कर......पर सब कुछ जो मेरे वश में रहे। फिर मैं चला अब। प्रणाम आचार्य ! तात को भी प्रणाम है।

(लक्ष्मण का प्रस्थान। द्रोणाचार्य और सुयोधन दोनों उसे विस्मय में देखते हैं।)

द्रोणाचार्य व्यूह के मध्य भाग की तुम रक्षा करो भद्र ! द्वार पर मैं चल रहा हूँ। लक्ष्मण से सावधान रहना। महासमुद्र में राघव का जो वेग होता है, उसी वेग से अभिमन्यु व्यूह मथ रहा है। वृष के सूर्य-किरण से बाण उसके धनुष-मण्डल से निकल कर तुम्हारी सेना को भस्म कर रहें हैं। मघा के मेघ-सा जयद्रथ तुम्हारे शत्रुओं पर बाण-वर्षा कर उन्हें गतिहीन कर चुका है। दोनों ओर की सेनाएँ चित्रपटी-सी निश्चल हैं। जो विश्वास में कभी नहीं आया वही आँखों से सब देख रहे हैं।

सुयोधन आचार्य अथाह समुद्र में जलथान जब बीच से टूट जाता है, उस पर चढ़े प्रवासियों की जो दशा होती है अकेले अभिमन्यु से वही दशा मेरी सेना की हो रही है। इस समय आपको···

द्रोणाचार्य किसी भी दशा में अभिमन्यु के निकट मैं नहीं जाऊँगा। मुझे उत्तेजित न करो भद्र ! अभिमन्यु का काल ले आयेगा उसे मेरे निकट। कह चुका हूँ मैं यह पहले, अन्त तक यही कहता रहूँगा। कब यहाँ रहना है तुम्हारा सेनापति जानता

है। धर्म और कर्म का उपदेश मुझे न देकर बने तो अपने कुल के इस बालक का वध करो।

सुयोधन साक्षात् काल हो रहा है वह इस समय। कुल और आयु के घेरे में वह नहीं आता। वसुसेन और गुरुपुत्र जैसे लोक-विजयी वीर उससे त्रस्त हो उठे हैं। काल बालक है वह.....कुल भी जैसे उसका यमराज का है।

द्रोणाचार्य देखो भद्र! वह कृतान्त-सा भीमसेन मुँह खोले हमें ग्रसने चला आ रहा है। तुम्हें यहाँ देखकर उसकी अग्नि और भड़क उठेगी। तुम व्यूह में चले जाओ तब तक मैं इसका निवारण करूँ।

**(सुयोधन का प्रस्थान। भीमसेन कन्धे पर गदा टिकाये प्रवेश करता है। उसकी साँस वेग से चल रही है, दाँत खुले हैं सिर के बाल तन कर खड़े हो गये हैं।)**

भीमसेन आग लगा कर आप यहाँ खड़े हैं आचार्य!

द्रोणाचार्य तुम्हारे बुझाने के लिए भद्र! अभिमन्यु को अकेले व्यूह में छोड़कर तुम इधर कहाँ भटक रहे हो?

भीमसेन आपके ऋण से छुट्टी लेनी है आज।

द्रोणाचार्य अपने कुल का दीपक न बुझने दो आज! मेरा ऋण फिर कभी चुका देना। इसमें जल्दी क्या......है?

भीमसेन चुप रहो ब्राह्मण! धनुष उठाओ। नहीं तो मैं......

द्रोणाचार्य जयद्रथ के अनुरोध से मैं आज केवल दर्शक हूँ...मेरे शिष्य कितना पौरुष दिखाते हैं आज...तब तक धनुष नहीं उठाना है मुझे जब तक कोई मुझ पर प्रहार नहीं करता। अभिमन्यु को काल के मुख में झोंककर जो तुम्हें गुरु से उऋण होना है तो चलने दो अपनी गदा। (एक ओर हाथ उठाकर) मेरे शस्त्र वहाँ रथ पर हैं।

भीमसेन कन्धे में धनुष और पीठ पर तूणीर तो है।

द्रोणाचार्य तुम सरीखे बली शिष्य के गुरु का वेश बनाने के लिए! धरती पर खड़े होकर धनुष की डोरी मैं नहीं खींचता और बिना तलत्र के बाण भी कभी नहीं छूता!

भीमसेन (आर्त होकर) हाय आचार्य! जयद्रथ आज पिनाकी बना है। देख लिया मैंने उसके सामने हमारी एक न चलेगी। समुद्र जैसे एक साथ अनेक नदियों को धारण करता है एक साथ वह अनेक वीरों को रोक रहा है। शत्रु पक्ष के सौ हाथियों को मार कर भी मैं दूसरा मार्ग न बना सका। धृष्टद्युम्न, सात्यकी, किसकी-किसकी बात कहूँ, सब विमूढ़ हो रहे हैं। अभिमन्यु के पहले मैं यह भूमि छोड़ चलूँ, इसलिये आप के पास आया हूँ कि आपसे वह गति सुलभ होगी।

द्रोणाचार्य पहले मुझे जाने दो भद्र! वहाँ पुत्र से पहले वह लोक पिता का है। गुरु का स्थान भी वही है जो पिता का है। गदा का ऐसा प्रहार करो कि मुझे दूसरी साँस न लेनी पड़े। घर आये अतिथि का अपमान द्रौपदी ने जिस क्षण किया

और तुम भी विवेक भूलकर उसके आचरण में रस लेते रहे उसी क्षण देवव्रत की बाण-शय्या बनी। यह व्यूह भी उसी क्षण रचा गया। दोनों दल का अब तक जो कुछ भोग रहा है, जो अभी होने वाला है सब के बीज उसी दिन बोये गये, अंकुर फूटे, शाखाएँ बढ़ीं, पत्ते और फूल आये और अब फल का संग्रह हो रहा है। हम सब चले जायेंगे अपने पीछे फल छोड़कर, जिनका भोग हमारी भावी पीढ़ी को भी करना होगा।

भीमसेन सच है आचार्य ! कृष्णा के उस अनाचार का फल यह युद्ध है।

द्रोणाचार्य रोना, हँसना, क्रोध और भय से अधीर हो उठना नारी की प्रकृति है, पर पुरुष की प्रकृति में इन सब के ऊपर विवेक है। सुयोधन तुम्हारे अतिथि थे। शत्रु-अतिथि का मान मित्र-अतिथि से अधिक है। ऋषिवाणी में अतिथि देव है। पुरुष का विवेक नारी दम्भ के सामने झुका था भीमसेन !

भीमसेन यह सब सोचकर अंग-अंग में परिताप का विष व्याप्त हो रहा है आचार्य ! पर अब करूँ क्या ?

द्रोणाचार्य कर्म का फल सुख से भोगो जिन्हें भोगना ही है, जिससे छूट निकलने का कोई माध्यम नहीं, उसमें दुःख का बोध कायरता है। पतन के पथ में जहाँ एक बार फिसले फिर तो निचली तह तक जाना है। इस पथ में गंगा भी नहीं बचीं, एक बार गिरीं तो फिर गिरती ही गयीं।

भीमसेन ऐ...कैसे ?

द्रोणाचार्य (मन्द हँसी) कैसे ? ब्रह्मा के कमण्डल से शङ्कर की जटा में, फिर हिमवान् के शिखर पर, नीचे पृथ्वी पर अन्त में समुद्र में, जिसका लगाव पाताल से है। स्वर्ग से गिरते-गिरते पाताल में। जिस गति से गंगा न बचीं हम कैसे बचते भीमसेन ! राजनीति में नारी का आना सदा यही करेगा। पुरुष के विवेक पर नारी-मोह का अंकुश समर की भेरी बराबर बजाता रहेगा।

भीमसेन अभिमन्यु अभी जीवित हैं आचार्य ! (एक ओर हाथ उठा कर ) उसके रथ की पताका वह देखिए अभी लहरा रही है।

द्रोणाचार्य भागो...भागो भीमसेन ! यहाँ से। जैसे बने अपने भतीजे की रक्षा करो। उसके न रहने पर पाण्डु-कुल का दीपक बुझ जायगा। कुल के नाश का दुःख पितर पितृलोक में भोगेंगे। अरे ( एक ओर देखते हुये) पाञ्चालपुत्र भी इधर ही भागा आ रहा है। उसे भी मेरे साथ वैर-शोधन करना है ? अभिमन्यु की चिन्ता उसे भी नहीं है ? ठीक है तब मैं चलूँ युद्ध में...जिसकी इच्छा हो अपने लेखे का भोग वहीं ले।

**(द्रोणाचार्य का प्रस्थान। धृष्टद्युम्न का धनुष चढाए प्रवेश। )**

धृष्टद्युम्न कहाँ गया वह आयुधजीवी ब्राह्मण ? इसी पापी का अन्त पहले हो ! ( **क्रोध में काँपता रहता है** )

भीमसेन हैं...हैं...आचार्य को अपशब्द...

धृष्टद्युम्न होगा वह तुम्हारा आचार्य। हम पाञ्चालों का वह प्रधान शत्रु है। सर्प और गरुड़ का नाता है मेरा उससे (सब ओर देखकर) वह जा रहा है रथ पर...तुमने उसे निकल जाने दिया ? (आहत सर्प-सा सिर हिलाता है।)

भीमसेन एक-एक पल के साथ...हमारी एक-एक साँस के साथ अभि-मन्यु का प्राण देह के बाहर जा रहा है।

धृष्टद्युम्न बालू से तेल न निकलेगा। फूँक से पर्वत भी न उड़ेगा। दो हाथों से क्षीर सागर पार न होगा। सब कुछ कर लिया। धनुष की डोरी में प्राण बाँध कर भी हम व्यूह में न जा सके। तब सोचा यह पापी ब्राह्मण का भार धरती से दूर करें।

भीमसेन सावधान पाञ्चाल! गुरु की, पिता की, धर्म और माता की निन्दा मैं नहीं सुनता। मेरे अपने पाप का फल यह चक्रव्यूह है। तुम्हारी बहन की जीभ मैंने क्यों न पकड़ी जब वह घर आये अतिथि का अनादर करने लगे ? चुप रहो। संकट की यह घड़ी परस्पर विवाद की नहीं है। शपथ लो या तो व्यूह में हम दोनों धंसेगे या वहीं खेत रहेंगे।

धृष्टद्युम्न खेत रहने का यत्न भी तो हम कर चुके। जयद्रथ के वरदान में हमारी मृत्यु नहीं केवल हमारी पराजय है। कैसा वरदान दिया भूतनाथ ने। भस्मासुरवाला वरदान

दिये होते कि उसके देखते ही हम भस्म हो जाते और इस दारुण संकट में अधजली मछली की गति हमारी न होती।

सात्यकी (प्रवेशकर) आत्म-हत्या जो पाप कर्म न होता तो अपने ही खडग से मैं अपना शीश इस व्यूह की भेंट कर देता। धिक्कार है हमें...हम अभी जी रहे हैं और हमारा प्राण इस व्यूह में जाल में फँसे सिंह की भाँति मारा जा रहा है।

भीमसेन कौन है...वह ? किस के सिर पर काल चढ़ा है जो हमारे अभिमन्यु का अमंगल करेगा। तव यह सूर्य आकाश में न रहेगा। धरती रसातल जायेगी।

(भीमसेन उन्माद ग्रस्त जैसा गदा नचाता हुआ वेग से भागता है।)

सात्यकी हा दैव ! अब क्या करें ? आर्य भीमसेन को उन्माद हो रहा है। उन्मत्त को किसी दुःख का तो बोध नहीं होता पाञ्चाले कुमार !

धृष्टद्युम्न कौन जाने ! लगता है हम सब उन्मत्त हो जायेंगे। लोकजयी अर्जुन का उन्माद इस सारी सृष्टि का तब नाश करेगा। हम सब उनके शत्रु बनेंगे। उनके पुत्र को जो हम न बचा पाये तो गाण्डीव की अग्नि हमारे सिर पर बरसेगी।

सात्यकी समय से पहले जो मैं वीर बन जाने का पाप न करता तो इस व्यूह की कला मुझे भी आ गयी होती।

धृष्टद्युम्न क्या कहते हो ?

सात्यकी बीस वर्ष की आयु से ही मैं आयुधजीवी बन गया। पाँच वर्ष और रुका होता तो चक्रव्यूह की विद्या का अधिकारी बन जाता। समय से पहले ही वीर बन जाने का लोभ...मुझ नराधम को नरक में भी ठौर न मिलेगा।

धृष्टद्युम्न ऐं क्या...

सात्यकी इसी दिन के लिए भद्र ! उनका यह अभागा शिष्य उनके गाढ़े समय में काम न आये, उनके प्रिय पुत्र की रक्षा में समर्थ न हो हाय ! जब वे मेरी ओर देखेंगे उनकी आँखों की मौन वाणी जब मुझसे पूछेगी...आततायी भोज ! समय से पहले ही तू वीर बन गया इसी फल के लिए ? तब मैं क्या करूँगा ? किन आँखों से उनकी ओर देखूँगा। अभागे कान उनके शब्द कैसे सुनेंगे ?

धृष्टद्युम्न शङ्कर का त्रिशूल सहने वाला पुत्र-शोक का शूल सह सकेगा ? विश्वास नहीं होता भद्र ! मुझे। अभिमन्यु अपने साथ अर्जुन को भी ले जायेगा। यह व्यूह नहीं...पाण्डवों के भाग्यसूर्य का राहु है यह ! देखो देखो...सात्यकी उधर देखो...... (हाथ उठाकर संकेत करता है।)

सात्यकी झंझा के क्षुब्ध समुद्र की टक्कर तट के पर्वतों से हो रही है मृत्यु के उन्माद में भीमसेन सिन्धुराज से जूझ रहे हैं। पापी न तो उनका प्राण ले रहा है और न व्यूह में मार्ग दे रहा है।

धृष्टद्युम्न हाय ! हाय ! अभिमन्यु का रथ भी व्यूहमण्डल से इधर हो आ रहा है। देख रहे हो वह ध्वजा। अभिमन्यु के बाणों से पीड़ित पर्वतखण्ड-से हाथी गिर रहे हैं।

सात्यकी धन्य वीर ! तुम हम कायरों के लिए व्यूह में नया मार्ग बना रहे हो ? चलें हम वहीं।

धृष्टद्युम्न हाँ...हाँ...चलें। (दोनों वेग से भागते हैं।)

सात्यकी (नेपथ्य में) अब क्या होगा ? जयद्रथ वहाँ भी पहुँच गया। धर्मराज, विराट और भीमसेन भी वहीं चल पड़े।



# परिवर्तन

[शङ्ख-ध्वनि और कोलाहल। युद्ध दारुण हो उठता है। शङ्ख, भेरी और अन्य बाजों की ध्वनि में शस्त्रों की ध्वनि भी सुनायी पड़ती है। वीरों की ललकार और अट्टहास में दूर से आती रथ चक्रों की ध्वनि। धनुष पर बाण चढ़ाये रुद्र-नृत्य में अभिमन्यु का प्रवेश : आँखों में से, ललाट से, अग्नि की लौ-सी फूट रही है। साँस में आँधी का वेग और खुले दाँतों से यम का क्रोध निकल रहा है।]

अभिमन्यु (सिर के बाल पीछे फेंक कर) निर्भय रहो। सुमित्र ! मेरे बाणों का मण्डल जो सब ओर से पूरा हो चुका है उसे तोड़ कर शत्रु जब तक प्रवेश करेगे हमारे अश्व विश्राम कर लेंगे।

सुमित्र ( नेपथ्य में ) जय हो कुमार ! आपके साथ दास भी आज यशस्वी है। घोड़ों की देह से बाण निकाल कर लेप मैं लगा चुका। अब ये गरुड़ के वेग से बैरियों को...( सुमित्र का प्रवेश )

अभिमन्यु इन्द्र, वरुण, यम, स्वयं भवानीपति शङ्कर से भी आज मैं समर करूँगा भद्र ! मामा कृष्ण और तात परन्तप भी जो आज मेरे मार्ग में आये...

सुमित्र व्यूह में द्वार तक मुझे चिन्ता थी...बाल हंस मन्दराचल नहीं उठायेगा, पर अब मैं निर्भय हूं। बूढ़े आचार्य को

छोड़ कर शत्रु-पक्ष के सभी बड़े वीरों ने एक साथ समर कर देख लिया। अभी भी अवसर है कुमार !

अभिमन्यु हा...हा...हा...व्यूह से बाहर निकलने का सुमित्र ! वह विद्या मुझे नहीं आती। व्यूह के सातवें चक्रमण्डल में हम इस समय हैं, यहीं आगे गर्भमण्डल कहीं होगा वहाँ पहुँचकर मैं विजय का शङ्खनाद करूँगा।

सुमित्र फिर क्या होगा ?

अभिमन्यु हा...हा...हा...भगवान जानें। आगे का कोई ज्ञान मुझे नहीं है। जब तक शस्त्र हैं; कर्म के साधन हैं कर्म करना है। कौन जाने शस्त्रों के न रहने पर मुझे इन दो बाहों से, मस्तक से, दाँत से समर करना पड़े। दिन के तीन पहर व्यूह में अकेले महारथियों से टकराते बीते। एक पहर में संध्या आयेगी, शत्रु युद्ध बन्द करेंगे या तात आयेंगे। ( **उसका शरीर काँपने लगता है, स्वर गद्गद् हो उठता है।** )

सुमित्र आदेश हो मैं रथ लौटाऊँ।

अभिमन्यु कोई मार्ग नहीं मिलेगा सुमित्र ! सपने की इस सम्पत्ति का भरोसा न करो। लौटने की कला मैं जानता ही नहीं कितनी बार कहूँ तुमसे ? प्रवेश की कला इन आँखों से परसों चित्र में सीखता रहा। सुना है जन्म के समय तात इस व्यूह का चित्र माता को दिखा रहे थे, उस समय का जो कुछ संस्कार हो, पर उसकी तब क्या ?

सुमित्र कुमार ! अब आपने यह साहस क्यों किया ?

**अभिमन्यु** पिता के यश लिये, कुल के यश के लिए सारथी ! पराजय का कलङ्क अब धर्मराज को न लगेगा। जन्म और मृत्यु की सीमा में जब तक यह साँस चले। इसकी चिन्ता क्या करूँ अब ? सोलह संवत्सर में जो कुछ हो गया, सौ में भी न होता कौन जानें ?

**सुमित्र** शत्रु चढ़ आये कुमार ! रथ पर आ जाइये।

**अभिमन्यु** हाँ... देख रहा हूँ, वसुसेन, गुरुपुत्र...वह दुःशासन है सुमित्र !

**सुमित्र** वही है कुमार !

**अभिमन्यु** बढ़ाओ रथ उसी ओर...जिस हाथ से उसने माता का केश पकड़ा उसे काट फेकूँ--

(दोनों का प्रस्थान। रथ चलने की ध्वनि)

**अभिमन्यु** (नेपथ्य में) ओ ! हो ! अबला के केश पकड़ने वाले हाथ में तुमने धनुष धारण किया है ?

**दुःशासन** (नेपथ्य मे) तीन पहर में मेरी सेना का नाश जो तूने किया, विश्वजयी महारथियों को विचलित कर तू जो अजेय बना है...

**अभिमन्यु** (नेपथ्य में व्यंग्य का स्वर) हाँ तब

**दुःशासन** (नेपथ्य में) तेरा सिर काटकर यहीं गिराना है, इसी बाण से कमलदण्ड से जैसे कमल तोड़े लेते हैं।

**अभिमन्यु** (नेपथ्य में) यह पुण्य तुम्हें पहले कमाना था; पुण्य कर्मों की वेला तुम नहीं जानते सबेरे होती है कम से कम मध्याह्न से पहले ? तब तो पता नहीं तुम किस विवर में छिपे थे।

सूर्य का रथ जब नीचे जा रहा है, तुम्हारे पुण्य का काल आया ? पापी के सभी कार्य कुसमय में होते हैं ?

दुःशासन (नेपथ्य में) अपने अन्त समय में जीभ से युद्ध करेगा ?

अभिमन्यु (नेपथ्य में) चुप रह वाचाल ! पूछ ले अपनी सेना से; रथियों, महारथियों से अकेले तीन पहर में युद्ध कैसे करता रहा हूँ ? मेरे बाणों पर चढ़ कर स्वर्ग जाने वालों का नाम तो जान ले ?

दुःशासन (नेपथ्य में) अपनी करनी का लेखा तू अब न रख सकेगा।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) अरे ! द्यूतवाला हाथ दिखा। देखना धनुष से कहीं पासे न चलने लगे (घृणा की हँसी)

दुःशासन (नेपथ्य में) आयु भागी जा रही है तेरी अब जान ले...

अभिमन्यु (नेपथ्य में) जब तक मेरे हाथ में धनुप है !...सीपी में समुद्र नहीं समाता पापी !

(धनुष की टङ्कार और बाणों की ध्वनि। सुयोधन और द्रोणाचार्य का प्रवेश।)

सुयोधन अकेला अभिमन्यु हमारी सेना का यमराज बना है और आप अब भी प्रसन्न हैं।

द्रोणाचार्य श्रीकृष्ण और अर्जुन से जिस शास्त्र की शिक्षा इसने ली है, उसका प्रयोग ठीक उसी रूप में कर रहा है यह। कभी यह अर्जुन है, कभी कृष्ण और कभी वह अकेले दोनों की शक्ति प्रस्तुत कर रहा है। सोलह वर्ष का किशोर महारथियों को विस्मय के समुद्र में बोर रहा है, धनुर्वेद की गरिमा जो कभी देखी-सुनी नहीं गयी यह दिखाता चला जा रहा है। मध्याह्न

के सूर्य-सा यह इस काल व्यूह में अब भी दृप्त है। वीरता की इस विभूति की प्रशंसा कौन वीर नहीं करेगा? गुण की प्रशस्ति में शत्रु-मित्र का विचार नहीं करते भद्र!

सुयोधन तब तो वह हमारा संहार कर दे फिर भी आप उसकी प्रशंसा करेंगे।

द्रोणाचार्य निश्चय! कर दे वह हमारा संहार। हम नहीं रहेंगे तो क्या हुआ? रहेगा तो वह भी नहीं। रह जायेगी उसके विक्रम की कथा, जिससे लोक कभी दरिद्र नहीं होगा। वह देखो तुम्हारे अनुज के रथ, सारथी, घोड़ों को एक ही साथ त्रस्त कर...गिरा-गिरा तुम्हारा अनुज...

दुःशासन (नेपथ्य में) ओह...ओह।

सुयोधन क्या करेगा यह काल नाग? कर्ण, गुरुपुत्र और कृपाचार्य ने इसे रोक कर मूर्छित अनुज के रथ को किसी प्रकार दूर कर दिया। असुरों से नष्ट किये गन्धर्व नगर की भाँति रथ सब ओर टूटे पड़े हैं, वीरों के कटे अंगों से धरती पटी है। आप इसे मारेंगे नहीं, वसुसेन और गुरुपुत्र भी इसे मारना नहीं चाहते।

द्रोणाचार्य कोई प्रमाण मिला इसका।

सुयोधन इतने वीरों का वध अपने सिर पर लेकर जो वह अभी तक जीवित है यही इसका प्रमाण है!

द्रोणाचार्य मुझ पर और मेरे पुत्र पर तुम्हें शङ्का हो पर कर्ण तो तुम्हारा सबसे अधिक विश्वासी मित्र है।

सुयोधन भाग्य बिगड़ने पर सगे भी पराये हो जाते हैं आचार्य ! अन्धकार में छाया भी साथ छोड़ देती है।

द्रोणाचार्य अपने घर के अन्धकार में दूसरे का प्रकाश असह्य हो उठता है। तुम्हारा दोष नहीं भद्र ! सब की यही दशा है। मेरे पुत्र को इसके नौ मर्मभेदी बाण लगे हैं, कर्ण को सत्रह, कृपाचार्य और दूसरे महारथियों की भी यही दशा है। अपने मारने वाले को कौन नहीं मारता ? अपने प्राण किसे सस्ते होते हैं ? देख रहे हो कहाँ जा रहा है उसका रथ ? व्यूह के गर्भमण्डल में। कर्ण, कृप, शल्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, इसके साथ के इतने सारे महारथी उसे नहीं रोक पाये ! व्यूह के हृदय में खड़ा होकर यह विजय का शङ्ख फूंकेगा।

सुयोधन जी...हाँ...घूम पड़ा उसका रथ अब इस ओर ( **पार्श्व में हाथ उठाकर** ) यही तो है गर्भमण्डल। उसके शङ्ख का घोष तब आप अपने कान से सुनेंगे। आपके रचे इस व्यूह की मर्यादा जो देवों से न मिटती...देव सेनापति और इन्द्र जिसमें समर्थ न होते, वही कार्य सुभद्रापुत्र कर रहा है।

**(नेपथ्य में कोलाहल, हँसी और ताली बजाने की ध्वनि)**

द्रोणाचार्य क्या सोच रहे हो ? जीवन भर में तुम्हारे लिए कुछ कर बैठने का अन्तिम अवसर अब आया। कुमार लक्ष्मण का रथ अभिमन्यु को रोके खड़ा है। कैसे आ गया तुम्हारा पुत्र इस युद्ध में ? माता के आँचल में सो जाने की बात कह कर वह गया था।

सुयोधन (आर्त्त होकर) त्राहि आचार्य ? आपके सामने पुत्र का अमंगल न हो।

(वेग में दोनों का प्रस्थान)

द्रोणाचार्य (नेपथ्य में) तुम कहाँ लक्ष्मण ? नदी-तट से, पर्वत-शिखर से, वनस्थली के भीतर से दृश्य देखते हैं मूढ़ ! समर-भूमि में दृश्य नहीं देखते लौट जाओ। तुम्हें देखकर पितामह की आँखों के मोती देखने लगता हूँ। लौटो ! छोड़ो मुझे यहाँ...

लक्ष्मण (नेपथ्य में) यमराज के महिष की घण्टी सुन रहे हो ?

अभिमन्यु (नेपथ्य में) दया आ रही है तुम पर। दिन भर के युद्ध में यह विकार मन में न आया। हटो ! जाओ मेरे मार्ग से व्यूह के हृदय में जा रहा हूँ मैं।

लक्ष्मण (नेपथ्य में) मुझे मारकर अब आगे बढ़ोगे।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) हाँ अब सुना। अन्तक वाहन की घण्टी बज रही है। मन्द-मन्द जैसे अभी दूर है। अभी समय है छोड़ दो मेरा मार्ग।

लक्ष्मण (नेपथ्य में) माता ने अपने दूध की लाज रखने को भेजा है मुझे। पुत्र के विजय की कामना किस माता को नहीं होती ? सुभद्रा चाची के यश में अब उनका भी भाग होगा। समर के लिए ही माता पुत्र को जन्म देती है। जो पुत्र रण में यश न ले उसके जन्म देने से अच्छा है नारी का बाँझ होना।

अभिमन्यु ( नेपथ्य में ) विस्मय हो रहा है लक्ष्मण ! मुझे तुम्हारी यह बात सुनकर...राजरानी तुम्हें तब मृत्यु के मुख में झोंक रही हैं ।

लक्ष्मण ( नेपथ्य में ) वही काम कर रही हैं जो तुम्हारी माँ ने पहले किया ।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) मेरे लिए कोई चारा नहीं था मूढ़ ! अपनी आयु देखो; मुकुट की मणि में अपना मोहक रूप देख लो...रेख भी नहीं भीनी अभी और मृत्यु का अनुराग बढ़ गया ? जीवन के सारे कर्म अभी शेष हैं जिसके...

( कर्ण और अश्वत्थामा का युद्ध-वेश में प्रवेश । दोनों की मुद्रा विस्मय और रोष की )

कर्ण हाँ क्या कहा है ?

अश्वत्थामा कह रहा है वह अपना प्रतिनिधि छोड़ जायगा, पर लक्ष्मण तो अभी कुमार है । उसके अन्त के साथ कुरु-वंश का अन्त है ।

कर्ण तब इसकी पत्नी गर्भवती है ।

अश्वत्थामा लगता तो यही है । पूज्यपाद दोनों के बीच में खड़े हो गये ।

लक्ष्मण (नेपथ्य में) होनी होकर रहेगी आचार्य ! किस भ्रम में आप पड़ रहे हैं ?

सुयोधन (नेपथ्य में) पुत्र ! आचार्य से भला...

लक्ष्मण ( नेपथ्य में) माता के दूध की लाज रखनी है तात ! अभि-मन्यु के निधन से सुभद्रा चाची की जो महिमा होगी वह मेरे

जीने से मेरी माता की न हो सकेगी। मेरे ललाट पर विजय-तिलक अपने हाथ से लगाकर उन्होंने कहा अपने दूध की लाज रखने को। इस भूमि पर मैं अकेला पुत्र नहीं हूँ। जो जन इस पुण्य-भूमि में खेत रहे उनकी भी माताएँ थीं। प्रसव की पीड़ा उन्हें भी हुई थी।

अभिमन्यु ( नेपथ्य में ) साधु! साधु! लक्ष्मण! हम दोनों के रक्त से इस समर का अन्त हो। भगवान् जानता है, तुम्हारा प्राण लेना मैं नहीं चाहता था। पितामह की कामना मेरी भावना को रंग दे रही थी। बाण-शय्या से कठिन पीड़ा अभी उनके ललाट की रेख में हैं। हम न रहें और तब हमारे जनक ठूंठ कङ्काल बनें रहें। इस समर-यज्ञ की अन्तिम आहुति हम बनें।

द्रोणाचार्य ( नेपथ्य में ) तुम दोनों के न रहने पर वह समर कितना दारुण होगा, सोचकर हृदय काँप रहा है। धर्म की मेखला टूट जायेगी तब...

लक्ष्मण (नेपथ्य में) उसे तोड़कर यह समर ठना था आचार्य! इन्द्र-प्रस्थ के सभा-भवन में जब घर आये अतिथि का अपमान हुआ, जिसके प्रतिकार को द्यूत की सभा रची गयी।

अभिमन्यु ( नेपथ्य में ) सच है इसी दिन की भूमिका थी वह...हम दोनों में धर्मयुद्ध हो लक्ष्मण! स्वीकार करते हो?

लक्ष्मण ( नेपथ्य में ) हाँ भाई! हमारे द्वैरथ युद्ध में धर्म की गति फिर स्थिर हो! मेरी रक्षा में तात या आचार्य ने, मेरे दल के

किसी दूसरे वीर ने जो शस्त्र का प्रयोग किया तो मैं नरक में पड़ूँगा। हमारे इस समर के साक्षी स्वयं धर्म या भगवान् सूर्य हों।

(सब ओर 'साधु-साधु', 'धन्य-धन्य' की ध्वनि सुन पड़ती है। कई शङ्ख एक साथ बज उठते हैं।)

द्रोणाचार्य (नेपथ्य में) हृदय को वज्र करो कुरुराज! धर्म की यह अन्तिम लीक बनी रहने दो। हानि-लाभ का लेखा वणिक की पण्यवीथी में चलता है। हटो, हट चलो यहाँ से इतनी दूर जहाँ पुत्र के प्रेम में भी धर्म की ज्योति मिले।

कर्ण कौन चला रहा है यह लोकचक्र? किसके हाथ की कठ-पुतली हैं हम? जो नहीं चाहता था, अभिमन्यु को वही करना पड़ा। लक्ष्मण को मार कर अब वह मृत्यु का स्वागत करेगा।

अश्वत्थामा आँधी में पड़े वृक्ष की दशा इस समय कुरुराज की हो रही है। ऐसे चल रहे हैं कि पैरों के नीचे अंगारे बिछे हों।

कर्ण दैव बायें हैं गुरुपुत्र! उनके काल की गति दुर्निवार है। किसे पता था कि यह सोलह वर्ष का किशोर वीरों का विस्मय बनेगा? अनुकूल वायु में दावाग्नि का वेग वन में बढ़ता है जैसे...समुद्र में बड़वानल जैसे...व्यूह के भीतर जिस समय यह अबाधगति से धंस पड़ा तब से तीन पहर बीत गये, चौथा भी चल निकला पर इसका धनुष अलातचक्र जो तब बना अभी वैसा ही है। सूर्य का तेज भी घटता है पर इसके तेज का ह्रास नहीं। लक्ष्मण को देखकर इसकी आकृति पर कुछ

कोमलता आ गयी थी। पर अब फिर वही रुद्र-भाव इसकी आँखों में भर आया है।

अश्वत्थामा अंगराज ! तुम इसे बराबर बचाते रहे। शत्रु का पुत्र है यह तुम्हारे।

कर्ण किरीटी मेरा शत्रु अब नहीं है गुरुपुत्र !

अश्वत्थामा अरे क्या कह रहे हो...

कर्ण हाँ, जी अब वह मेरा शत्रु नहीं है। अभिमन्यु मुझे उसी तरह खींचता रहा है जैसे मेरे तन का नाता हो उससे। फिर भी उस पर दया नहीं की मैंने। केवल दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं हो सका मुझसे। सो केवल इस विचार से कि बालक के विरुद्ध उन अस्त्रों का प्रयोग वर्जित है। ऐसे विस्मय से न देखो। कारण कभी न पूछना...वह मैं अपने भगवान् से भी न कहूँगा, उनसे कुछ छिपा नहीं है यह जान कर भी...वह बात मेरे मुँह से न निकलेगी। न होता यह युद्ध भूदेव ! जो मैं अपने जीवन का सबसे बड़ा सत्य पहले जानता।

अश्वत्थामा जीवन के सबसे बड़े सत्य का सम्बन्ध जन्म के साथ होता है अंगराज।

कर्ण नहीं कहना है मुझे अब आगे एक शब्द भी, जन्म का सत्य केवल जननी जानती है, मेरी जननी का पता जो तुम्हें... (उदास हो उठता है)

अश्वत्थामा वसुसेन तुमने तो मुझे उत्सुक कर दिया।

कर्ण खोज लो मेरी जननी को तुम्हारी उत्सुकता मिट जायेगी !

अश्वत्थामा अब तक क्या वे जीवित होंगी ?

कर्ण यह मान कर खोजो कि अभी वह जीवित हैं। माता गान्धारी अभी जी रही हैं, धर्मराज युधिष्ठिर की माँ भी अभी जी रही हैं,...कौन जाने मेरी माँ भी अभी जीवित हों।

अश्वत्थामा देवी कुन्ती को माता नहीं कह सकते तुम। इसलिए कि वे तुम्हारे शत्रु अर्जुन की जननी हैं।

कर्ण अभी-अभी कहा तुमसे अर्जुन अब मेरा शत्रु नहीं है। अभिमन्यु के प्रति मेरे मन में पुत्र का आकर्षण है।

अश्वत्थामा तब देवी कुन्ती भी तुम्हारी माँ बन सकेंगी। देवी गान्धारी को जैसे माता कहा।

कर्ण तब जगत् दरिद्र हो उठेगा ब्राह्मण! अर्जुन और कर्ण जो दोनों एक माता के पुत्र बन जायें तब संसार भर की माताओं की महिमा मिट जायेगी। गाण्डीव की रोक धरती पर कहीं नहीं हैं, जो कहीं कालपृष्ठ भी उसी ओर से चले तो पौरुष और धर्म दोनों का लोप होगा। जिस दिन अर्जुन मेरा प्रतिद्वन्द्वी न रहेगा, सुन रहे हो...मेरा भाग्य फूट जायेगा।

अश्वथामा अभिमन्यु और लक्ष्मण रथ से उतर कर गले लग रहे हैं।

कर्ण परस्पर की शत्रुता से दूर अनासक्त भाव से युद्ध करेंगे तब दोनों। हमसे अच्छी थी यह हमारी भावी पीढ़ी जो हमारे ही पाप से हमसे पहले मिट रही है।

अश्वत्थामा इन दोनों को खोकर अर्जुन और सुयोधन अपने पक्ष के वीरों के साथ शोक के समुद्र में एक ही साथ डूबेंगे।

**(धनुष की भयानक टङ्कार गूंज उठती है।)**

कर्ण — रथ पर लौट कर दोनों ने एक साथ धनुष की टङ्कार किया। एक साथ ऐसी टङ्कार जैसे एक ही धनुष की हो। सगे भाई-सा व्यवहार इन दोनों का जीवन भर निभ गया। बैर का काला रंग इनके मन पर कभी चढ़ा नहीं।

अश्वत्थामा — कम-से-कम एक का अन्त तो आज है।

कर्ण — (दुख की हँसी) ह...ह...इनका साथ वहाँ भी न छूटेगा। होनी का संकेत तो यही है। (बाणों के छूटने की ध्वनि क्रमशः बढ़ने लगती है।)

अश्वत्थामा — पर्वत गुहा से जैसे क्रौंच निकलते हैं, दोनों के बाण चल पड़े। अरे! इस समय दोनों के दाँत मन्द हास्य में खुल रहें हैं। अंगराज! क्या अन्त तक इन्हें क्रोध न आयेगा?

कर्ण — लक्षण तो यही है भद्र! यमराज को भी आज विस्मय हो रहा होगा। इनकी हँसी में पिघलकर कहीं वह आज अपना कर्म न भूल जाय। दो घड़ी जो ये धर्म-युद्ध में लगे रहे इसी तरह और सूर्य भगवान् डूबने लगे तब यह युद्ध बन्द होगा और दोनों बच जायेंगे।

अश्वत्थामा — ऐसा हो तो मैं कल शङ्कर की पूजा ऐसी करूं......जैसी कभी न की हो। सौ पंखुड़ियों वाले सौ कमल जहाँ भी मिलें कल शङ्कर पर चढ़ेंगे।

कर्ण — इस युद्ध का वर्णन कवि किन शब्दों में करेगा गुरुपुत्र!

अश्वत्थामा — किन शब्दों में...

कर्ण — आकृति पर क्रोध की मुद्रा, आँखों में अग्नि का रंग, साँस में मरुत का वेग, टेढ़ी भौं, दाँतों की रगड़, अपमान और निन्दा के भाव, अब तक कवि यही गाते आये हैं। इन दोनों के युद्ध में यह कुछ नहीं है। तब इसका चित्रण कवि-वाणी में कैसे हो ?

अश्वत्थामा — क्या कठिन है ? आकृति पर अनुराग की मुद्रा, आँखों में शील का रग, साँस में मलय मरुत, स्निग्ध भौं, दाँतों पर हँसी, प्रीति और विनय के भाव। (मन्द हँसी)

कर्ण — दोनों की ज्या एक साथ कटी।

अश्वत्थामा — धनुष पर डोरी चढ़ाना भूल कर दोनों मन्त्रमुग्ध-से देखने लगे हैं।

लक्ष्मण — ( नेपथ्य में ) युद्ध करना है हमें भाई ! इस क्रीड़ा से काम न चलेगा।

अभिमन्यु — ( नेपथ्य में ) वीर के लिए युद्ध क्रीड़ा से अधिक कुछ नहीं है। क्रीड़ा का सुख जो युद्ध से ले ले...समझ रहे हो ? आग्नेय, वायव्य, वारुण करते चलो प्रयोग सभी दिव्यास्त्रों का...पर मानों उसे क्रीड़ा। अग्नि की लपटें आकाश चाटें, आँधी के वेग में हाथी और रथ उड़ें, जल की धारा में धरती डूबे, पर हमारे भीतर द्रोह न हो, क्रोध न हो, भय भी न हो।

द्रोणाचार्य — (नेपथ्य में) साधु ! तुम धन्य हो ! वत्स ! तुम दोनों का यश तब तक मन्द न हो जब तक भूमि पर वीरों का जन्म हो, कवियों के कण्ठ में जब तक वाणी, गंगा में जब तक जल रहे और रहे नारी के हृदय में पुत्र की कामना।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) अनुग्रह है आपका आचार्य !

लक्ष्मण (नेपथ्य में) आशीर्वाद की महिमा हम न बिगाड़ें।

कर्ण देखो गुरुपुत्र ! यह समर। दो सूर्य, दो रुद्र, दो यम लड़ रहे हैं जैसे। अलातचक्र से दोनों के धनुष घूम-घूमकर वीरों के हृदय में हर्ष और कायरों के हृदय में भय भर रहे हैं। आचार्य के अंग-अंग से आनन्द की लहरें उठ रही हैं।

(सब ओर कोलाहल, शङ्ख और 'धन्य-धन्य' के स्वर गूंज रहे हैं। दूर पर चारण-गीत सुन पड़ता है, जो क्रमशः निकट आ रहा है। दिशाओं में अग्नि की लपटें जैसे उठ रही हैं चारण प्रवेश करता है।)

अश्वत्थामा गाओ चारण ! तुम्हारे गीत के लिए इससे बढ कर पुण्य-पर्व दूसरा न मिलेगा। ऐसा गीत भद्र ! जिसमें वीर के सामने मृत्यु हाथ जोड़े खड़ी हो। जिसके सम्मोहन में यम-राज को नींद आ जाये। सूर्यमण्डल के भीतर से होकर जो अक्षय स्वर्ग का मार्ग है हम इन्हीं आँखों से देखने लगें।

चारण तो फिर सुनो देवता ! दोनों राजकुमार जैसे दो कामदेव लड़ रहे हैं। आखें इनके युद्ध को देखेंगी और तब कण्ठ में सरस्वती बैठकर मेरी वाणी के सहारे इनकी प्रशस्ति गायेंगी।

धरा में झुकी मृत्यु दासी बनी।
लिखे चित्र में—से खड़े देवजन थे,
कि अन्तक की सोयी समर में अनी। धरा में...
वरण को तुम्हारे मगन-मन चलीं ये...
पुलक में, जयति जय अमर-कामिनी। धरा ...

(भाव में विभोर-सा चारण गाता हुआ, निकल जाता है। सब ओर से जैसे इसी गीत की ध्वनि सुन पड़ती हैं। कर्ण और अश्वत्थामा धरती पर धनुष-टेक कर आँखें बन्द कर लेते हैं।)

द्रोणाचार्य (नेपथ्य में) इन आँखों से ऐसी लुभावनी वीर गति न देखी। सावधान कुरुराज !

कर्ण (अकस्मात् ऊपर देखकर) अहा ! प्रफुल्ल कमल लेकर जैसे गरुड़ उड़ा जा रहा है।

अश्वत्थामा (ऊपर देखकर) अभिमन्यु का अर्धचन्द्र बाण गरुड़ और लक्ष्मण का शीश कमल...

कर्ण दूसरी उपमा मुझे न सूझी।

सुयोधन (नेपथ्य में) पुत्रघाती ! मेरा क्रोध तुझे काल सर्प बन कर डसेगा। पिता......माता......और उस किशोरी पत्नी को स्मरण कर।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) लक्ष्मण को छोड़कर दूसरा कोई मेरी स्मृति में अब नहीं आयेगा कुरुराज ! भस्म कर दो मुझे अपने क्रोध

की अग्नि में...शपथ दे रहा हूँ मैं तुम्हारे पक्ष के वीरों को...वीर-धर्म की शपथ है उन्हें जो वे सब मिलकर मेरा वध न करें। आत्मघात पाप न होता तो मेरी असि मेरे कण्ठ पर होती। भगवान् यमराज कब से मेरी प्रतीक्षा कर रहे है, लक्ष्मण घूमकर मेरी ओर देख रहा है। मैं अभी भी देह के बन्धन में हूँ।

द्रोणाचार्य (प्रवेश कर) रक्षा करो वसुसेन! कुरुराज की। (अश्वत्थामा से) तुम भी पुत्र! उसने तुम लोगों को जो शपथ दी सुन लिया तुम लोगों ने।

कर्ण तब मैं अपनी ऐन्द्री शक्ति का प्रयोग इस बालक पर करूँ। दूसरे किसी शस्त्र के वश में यह नहीं है। आप जानते हैं वह शक्ति केवल अर्जुन के लिए है।

द्रोणाचार्य इसके हाथ में जब तक शस्त्र है, इन्द्र और यम से शङ्कर और विष्णु से यह न हारेगा। इसके एक-एक शस्त्र को काट फेंकों और जब शस्त्र न रहेंगे...समझ रहे हो। अपने शस्त्र का लक्ष्य जो इसके शरीर को न बनायें वे इसके शस्त्र काटें। शरीर पर आघात दैव जिससे कराये।

कर्ण इस कार्य का श्रीगणेश मैं इसके धनुष की ज्या काट कर कर रहा हूँ।

**(कर्ण और अश्वत्थामा का प्रस्थान। युद्ध भयानक हो उठता है।)**

अभिमन्यु (नेपथ्य में) अंगराज! गिन लो कितने महारथी एक साथ मुझ पर प्रहार कर रहे हैं।

कर्ण (नेपथ्य में) तुमने इसी के लिए अभी शपथ दी...

अभिमन्यु (नेपथ्य में) शपथ दी कब ?

कर्ण (नेपथ्य में) काल-पाश में फँस जाने पर किसी को अपनी बात स्मरण नहीं रहती ।

द्रोणाचार्य कर्ण उसकी ज्या काटने गया और अपनी ज्या न बचा सका। तो इस अभिमन्यु के रूप में काल स्वयं लड़ रहा है । जिस पर किसी वीर की कुछ चल नहीं रही है। बचो कर्ण ! यह बाण तुम्हारे हृदय में लगेगा । नहीं बच सका । बाण कवच भेद कर हृदय में लगा और रथ का दण्ड पकड़े वह अर्ध-मूर्छित है ।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) व्यूह के गर्भ मण्डल में आ गया आचार्य ! या अभी और चलना है ?

द्रोणाचार्य धन्य हो वीर ! तुम इस समय व्यूह के गर्भ-मण्डल में अकेले महारथियों के बीच में...

अभिमन्यु (नेपथ्य में) देख लें अपने शिष्यों का युद्ध आचार्य ! कर्ण ने मेरी प्रत्यञ्चा काट दी ।

द्रोणाचार्य वसुसेन मेरे शिष्य नहीं हैं। इसी दिन के लिए मैंने इन्हें अपनी विद्या से वंचित रक्खा ।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) तीन बार मेरी प्रत्यञ्चा काट दी गयी । आपके पुत्र ने भी यही कार्य किया । तब मैं फेंक रहा हूँ यह धनुष । (धनुष के दूर गिरने की ध्वनि)

द्रोणाचार्य एक-एक कर सभी शस्त्र कटते जा रहे हैं। परशु, परिध, असि भल्ल...जैसे इसके शस्त्र का भी अन्त न होगा ।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) सावधान आचार्य ! मेरा अन्तिम अस्त्र आप पर चल रहा है।

द्रोणाचार्य आने दो पुत्र ! कहीं कुछ देख सुन रहे हो अभी या नहीं ?

अभिमन्यु (नेपथ्य में) अनेक यमराज और अनेक वाहन, जिनके कण्ठ की घण्टी से मेरे प्राण की लय बज रही है।

(दायें हाथ में चक्र घुमाते अभिमन्यु का प्रवेश। चक्र की गति में उसका शरीर मण्डल बना रहा है। चक्र के प्रकाश में उसके शरीर की छाया-सी देख पड़ती है।)

अभिमन्यु (उन्माद की हँसी ) हा......हा......तुम्हारे दिन पूरे हो गये ब्राह्मण !

द्रोणाचार्य भगवान् करे वत्स !

(अभिमन्यु द्रोणाचार्य को लक्ष्य कर चक्र चलाता है। द्रोणाचार्य बाणों से चक्र को खण्ड-खण्ड कर गिरा देते हैं।)

अभिमन्यु तो आप बच गये आचार्य ! मुझे वहाँ अकेले जाना है। रथ के चक्र से आचार्य ! अब रथ के चक्र से..(वेग में प्रस्थान)

द्रोणाचार्य वीरों में तुम्हारी रेख कभी न मिटेगी पुत्र... ..

अभिमन्यु (नेपथ्य में) हा......हा......हा......(उन्माद की हँसी

कर्ण (प्रवेश कर) मृत्यु के पूर्व का उन्माद है यह आचार्य ?

द्रोणाचार्य हाँ भद्र ! अन्त समय में भी महान् की गति महान् होती है। अस्ताचलगामी सूर्य की किरणें उस समय पर्वत शिखर और वृक्षों की ऊँची डाल पर रहती हैं। अर्जुन-पुत्र इस अन्तिम वेला में भी महान् है। देख रहे हो सब ओर से अस्त्र बरस

रहे हैं, रथ का चक्का हाथ में लेकर भैरव-नृत्य कर रहा है जैसे...भूमि के उद्धार में भगवान् वाराह की जो गति समुद्र के अतल में थी कुछ वैसी ही गति इस समय इसकी है।)

सुयोधन हाय आचार्य ! (दोनों हाथों से सिर पकड़ कर प्रवेश करता है।)

द्रोणाचार्य धीरज धरो भद्र।

सुयोधन पुत्रघाती अभी जीवित है। वज्र के बने हैं अंग इसके, जिन पर अस्त्रों की वर्षा, पर्वत शिखर पर जलवर्षा-सी निष्फल हो रही है।

द्रोणाचार्य वह समय जिस क्षण आ पहुँचेगा फूल के आघात से इसके प्राण-पखेरू उड़ जायेंगे। दीपक की लौ बुझने के पहले बढ़ जाती है। अब इसे बुझना है। देह भर में जितने घाव लगे हैं, कुसुमित किंशुक-सी इसके शरीर की शोभा अब मिटनेवाली है। इसके रक्त से कितनी धरती रँगी गयी...... कितना रक्त बह निकला......कौन जाने ? अन्तिम बूंद निकलते ही धरती पर आ गिरेगा। क्रोध और परिताप भूल-कर अपने कुल के परम तेजस्वी प्रकाश-पुंज का मिटना देखो।

सुयोधन शिव के शूल से दारुण होता है पुत्र-वियोग का शूल...

द्रोणाचार्य अभिमन्यु की मृत्यु से वह पीड़ा और बढ़ेगी भद्र ! क्रोध में मन की निसर्ग-गति को भूलकर तुम उसकी मृत्यु की कामना कर रहे हो। दोनों दल में कौन है ऐसा जिसके मर्म में लक्ष्मण का शूल नहीं गड़ा और अब किसके हृदय में

अभिमन्यु का शूल न गड़ेगा ? शत्रु जब नहीं रहता तभी उसके गुण देख पड़ते हैं। अभिमन्यु तो तुम्हारा शत्रु कभी नहीं रहा।

सुयोधन कुम्हार के चक्के-सी धरती घूम रही है। (हाथों में सिर थाम धरती पर बैठ जाता है।)

कर्ण अब...अब...गिरा...गिर पड़ा अन्त में...

द्रोणाचार्य अन्तिम बूंद रक्त की जब तक रही...

कर्ण हैं...हैं कहाँ जा रहे हो गदा उठाये तुम...

द्रोणाचार्य रुको...रुको...अरे आततायी ! धिक्कार है तुझे,...

सुयोधन हाय ! हाय ! यह क्या ?

**(गदा के भीषण प्रहार से कपाल फूटने की ध्वनि होती है।)**

द्रोणाचार्य उत्सव मनाओ भद्र ! अब। तुम्हारे भतीजे ने मरणासन्न अभिमन्यु के सिर में गदा का प्रहार किया है।

सुयोधन (भागते हुए) क्यों रे नीच ! लक्ष्मण के यश का ग्राह ! यह तूने क्या किया ?

(नेपथ्य में) पितामह की शरशय्या का फल है यह तात ! इस अकेले ने कितने महारथियों और कितनी सेना का नाश किया, यह न भूलें।

सुयोधन (नेपथ्य में) तब कहाँ था अभागा ! तभी रोकता इसे। मृत सिंह के शव पर दाँत मारनेवाला जम्बुक ! तब कहाँ था तू ? अभिमन्यु...अभिमन्यु...हाय पुत्र ! तो तुम चले गये। दिन भर सूर्य के तेज से दृप्त रह कर तुम अस्त हो गये ? उठो पुत्र...तुमसे मेरा अब वैर नहीं है।

कर्ण — हाँ आचार्य !

द्रोणाचार्य — देख रहे हो यह दृश्य ?...

कर्ण — आँखें देख रही हैं पर मन सहसा विश्वास नहीं करता अभिमन्यु का शीश कुरुराज की गोद में है ।

द्रोणाचार्य — सुभद्रा का यह पुत्र अजातशत्रु था। दिन भर वीरों का वध कर स्वयं भी उसी गति को प्राप्त हुआ। किसी के प्रति इसके मन में वैर नहीं आया। पल भर को भी इसकी आँखें लाल न हुईं, भवें टेढ़ीं न पड़ीं ! चलो सुयोधन को सम्हालो। कल की चिन्ता करो। सृष्टि का कोई चिह्न कल अर्जुन छोड़ेगा ? (दोनों का प्रस्थान)

(परदा गिरता है।)



# तीसरा अङ्क

[ सन्ध्या। आकाश में पक्षियों की ध्वनि। दूर पर रथों के चलने की ध्वनि। कभी-कभी शङ्ख बज उठते हैं, जिनकी ध्वनि सब दिशाओं से आ रही है। कन्धे में धनुष, पीठ पर तूण और अन्य शस्त्रों को यथा-स्थान धारण किये योद्धा दुःख और चिन्ता के भार से दबे चले जा रहे हैं। युधिष्ठिर शिविर-द्वार के बाहर खड़े होकर सामने की ओर देख रहे हैं। शिविर के पीछे की ओर नारियाँ रो रही हैं, दूर से आती विलाप की ध्वनि सारे वातावरण को शोक से भर रही है। आँधी में पड़े वृक्ष-से धर्मराज रह-रह कर काँप उठते हैं। शिविर के भीतर बैठने के आसन भद्रपीठ सब देख पड़ते है। दोनों हाथों से धर्मराज अपने सिर का बाल खींचने लगते हैं।]

धृष्टद्युम्न (दायें से प्रवेश कर युधिष्ठिर का हाथ पकड़ लेता है।) शोक से पराजित न हो धर्मराज! (एक ओर हाथ उठाकर) शत्रुचर वहीं खड़े हैं। अपने हाथों सिर के बाल नोचते धर्मराज के चित्र आज रात में बन जायेंगे और कल प्रातः शत्रुओं के सुख और विनोद के कारण बनेंगे।

युधिष्ठिर धर्मराज तुम बनो द्रुपदपुत्र! इस नाम से मुझ पापी का अब सम्बोधन न करो...( गहरी साँस लेते हैं ) चले जाओ तुम

यहाँ से...(सामने की ओर हाथ उठाकर) कपिध्वज गरुड़-सा आकाश चीरता वह आ रहा है। अर्जुन के सामने पहले मैं पड़ूँ, समझ रहे हो।

धृष्टद्युम्न आप धीर न रह सकेंगे धर्मराज !

युधिष्ठिर हाय रे ! कौन धीर है आज ? धरती, आकाश...सूर्य भी डूबने के पहले अधीर था...अस्ताचल के ऊपर...दया करो पांचाल कुमार ! मना करो अपनी बहन को...और सब रोएं पर वह नहीं ! द्रौपदी का रुदन विधाता के परिहास-सा मेरे हृदय को चीर रहा है। (दोनों हाथों से छाती दबा लेते हैं।)

धृष्टद्युम्न कृष्णा यहीं शिविर के कोने में अभी...

युधिष्ठिर तब यमलोक में भी यह मुझे चैन न लेने देगी। कहाँ है ? कह दूँ यह दिन उसके उत्सव-आनन्द का है। उसका मन का हो गया। नाचे, गाये, दान दे...प्रसाधन और शृङ्गार से अप्सरियों की...(शिविर की ओर बढ़ते हैं, धृष्टद्युम्न पकड़ लेता है।)

धृष्टद्युम्न बहन का अनादर अपनी आंखों में नहीं देखूंगा धर्मराज...

युधिष्ठिर तब शस्त्र लो। अर्जुन के आने के पहले मुझे भी वहीं भेज दो जहाँ अभिमन्यु गया है। हम पांच पुरुष, तुम्हारी बहन को अंकुश में न रख सके, उसके अंकुश के नीचे हमारे सिर सदैव झुके रहे...उसी का फल यह युद्ध है। भीमसेन की गदा और अर्जुन का गाण्डीव...

धृष्टद्युम्न शोक में विवेक छूट जाता है धर्मराज ! तुम्हारा दोष नहीं।

युधिष्ठिर मत कहो मुझे धर्मराज...सुन लो...पिता और माता के वध का पाप, ब्राह्मण और गुरु के वध का पाप लगे तुम्हें, जो तुम फिर मुझे इस शब्द से सम्बोधित करो ।

धृष्टद्युम्न ब्राह्मण-वध का पाप तो मेरे भाग्य में है। द्रोणाचार्य के वध के हेतु जब मेरा जन्म हुआ...

द्रौपदी (प्रवेश कर) कृष्णा के कारण नहीं आर्यपुत्र ? यह युद्ध कृष्णा के कारण हुआ। मैं उनके हाथ की कठपुतली रही हूँ। पुरुष पाप से चाहे न डरे, शपथ की चिन्ता उसे न हो..पर नारी...पाप और शपथ उसकी दो आँखें हैं जिनसे वह जगत् को देखती है ।

युधिष्ठिर अन्तःपुर की देवियों को सम्हालो महादेवी, पुत्रवधू उत्तरा को और अपनी बहन सुभद्रा को। यह समय तुम्हारे आनन्द मनाने का है, रोने का नहीं ।

द्रौपदी मेरे आँसू भी आनन्द के हैं आर्यपुत्र ! मेरा पुत्र शिवलोक में गया है, दिन भर सूर्य की भाँति रणभूमि को तपाकर सौ-सौ रथियों को सूखे पत्ते-सा उड़ा कर...हमारा नाम जितना अभिमन्यु के कारण चलेगा उतना अपने कारण नहीं। मनुष्यों में जो देव हैं उसके युद्ध को विस्मय से देखते रहे हैं। देवता भी देखते रहे होंगे, आँखवालों ने देखा होगा।

युधिष्ठिर अर्जुन के सामने तुम न पड़ो देवी ! (कातरदृष्टि)।

द्रौपदी क्यों क्या होगा ? पुत्र-शोक में आर्यपुत्र मेरा बध कर देंगे ?

कोई बात नहीं जो यह भी हो जाय। पुत्र के निकट मैं फिर भी माता ही रहूँगी।

युधिष्ठिर यह बात सुभद्रा कह सकेगी जो नौ मास उसे अपने उदर में ढोती रही...जिसने उसे जन्म दिया। तुम राजनीति की बात करो देवी! माता की बात तुम क्या जानो?

द्रौपदी धिक्कार है आर्यपुत्र! तब मेरे जन्म को। (दोनो हाथों में सिर थाम कर चक्र की गति में घूम कर बैठ जाती है।)

धृष्टद्युम्न कृष्णा पर यह आघात धर्मराज! इतना दारुण! इसके सन्तानहीन होने पर तुम व्यंग कर रहे हो? किस पुत्र के पिता तुम हो? छी...छी...

युधिष्ठिर (प्रकृति का व्यंग है यह भद्र! मेरा नहीं। पुरुष मन और प्राण से दूसरे की सन्तति को अपना बना लेता है, पर नारी के लिए यह बात कहीं नहीं सुनी गयी। अपनी देह की सीमा के बाहर नारी नहीं जाती। देख लिया भद्र! तुम्हारी बहन के आँसू भी राजनीति के हैं, अभिमन्यु का अनुराग उसमें भी नहीं बहा।)

द्रौपदी मेरे हृदय का अनुराग उसी क्षण सूख गया आर्यपुत्र! जिस क्षण दुःशासन ने मेरा केश खींचा था, जब मेरे कन्धे का वस्त्र नीचे धरती पर गिरा था...और सुनोगे जब मेरी आधी देह नंगी हो गयी थी।

युधिष्ठिर हाँ...घर आये अतिथि का आदर जो तुमने इन्द्रप्रस्थ में किया था, जिस आदर के प्रतिकार के लिए कुरुभवन में

द्यूत रचा गया हमारी हार का बदला जहाँ तुम अपनी जीभ से लेने लगीं...एक-एक साँस में जहाँ सौ-सौ अपशब्द तुमने अन्धे चाचा धृतराष्ट्र के लिए कहे। तुम्हारे अपशब्दों में...वह भी पिता के प्रति...दुःशासन की क्या दशा हुई होगी? शत्रु के आचरण पर शत्रुभावना से मुक्त होकर विचार हो सकेगा।

धृष्टद्युम्न जो बीत गया उसे अब लौटाकर क्या होगा?

युधिष्ठिर पर उसका फल.. बिना भोगे उससे त्राण भी कहाँ है? कर्म के बन्धन के फल भोग पर ही कटते हैं...कट रहे हैं और कटेंगे। जो चला गया...आज जो है और कभी आयेगा परस्पर ऐसे बने गहरे सम्बन्ध सूत्र में बँधे हैं कि उन्हें कहीं किसी जगह काट कर अलग नहीं कर सकते।

द्रौपदी होनी न रुकी। रोक कर हार गयी मैं, पर पुत्र न रुका। सब कुछ जो मेरे किये होता रहा तो उसे रुकना था, क्यों गया युद्ध में? मेरा बल उस पर क्यों न चला?

युधिष्ठिर जहाँ बुद्धि काम नहीं करती...पौरुष थक जाता है वहाँ अन्त में होनहार की आड़ ही काम देती है। चलो तुम भीतर। अर्जुन तुम्हें यहाँ न देखे।

द्रौपदी तो मैं जन्म भर के लिए आर्यपुत्र की आँखों से दूर हो जाऊँ!

युधिष्ठिर तुम्हें देख कर परन्तप का शोक कहीं उसी के लिए घातक न बने, इसी डर से देवी। तुम मेरा अनुरोध मान कर चली

जाओ। पुत्रवधू को देखो, कहीं वह अपने साथ इस कुल के भावी दीपक को भी न बुझा दे।

द्रौपदी   किसी जन्म में हमने कोई अपराध किया था जिसका फल वह पुत्र बन कर दे गया। कोई देवता...कोई ऋषि था वह जो शापभ्रष्ट होकर इस योनि में आया था और इतने ही दिनों में मुक्त हो गया। रणयात्रा के पहले ही इस ओर से वह हमें निर्भय कर गया।

युधिष्ठिर   ऐं...नहीं समझ रहा हूं मैं, क्या कह रही हो ?

द्रौपदी   पुत्रवधू को वह उसके लिए बाँध गया। उसके पुत्र को जब तक विराटपुत्री की देह से काम रहेगा तब तक वह अपने शरीर की रक्षा करेगी।

युधिष्ठिर   वधू मान गयी यह बात ?

द्रौपदी   हां आर्यपुत्र ! मान गयी, पूरे सुख और सन्तोष से। संकट की उस घड़ी में भी पुत्र उसे सब ओर से सुखी और प्रसन्न करके गया। किसी को विश्वास न होगा, उसकी आंखें बरसने की बात कौन कहे भींगी भी नहीं।

युधिष्ठिर   (विस्मय) रो नहीं रही है वह तब...

द्रौपदी   उसकी जो गति है कही नहीं जा सकती आर्यपुत्र ! शब्द नहीं हैं जो वह चित्र उतार सकें। जैसे किसी दूसरे लोक से वह यहाँ आ गयी, इस धरती से...इसके जीवों से जिसका कोई परिचय नहीं। कोई नहीं है जिसे-वह पहले से जानती-पहचानती हो। आंख उठा कर उसकी ओर देखा नहीं जाता।

धृष्टद्युम्न न कहो बहन ! छोड़ दो भगवान् के भरोसे। आँसू निकल जाने पर भीतर की आग बुझती है...उसका इस तरह शिला-सी कठोर बन जाना किसी बड़े संकट की सूचना है। ( सामने देखकर ) वह कपिध्वज आ गया। हम लोग यहीं रहेंगे ?

युधिष्ठिर हे देव ! भीमसेन अभी नहीं आया। पुत्र का शव भी अभी तक न आ सका।

सात्यकी ( नेपथ्य में ) शिविर के द्वार पर नहीं...आते ही गुरु की दृष्टि मृतपुत्र पर न पड़े। शोक का वेग जब उनका मन्द पड़े, पौरुष और ओज के भाव जब उनके भीतर जाग उठें तब वे देखें।

भीमसेन ( नेपथ्य में ) सच कह रहे हो भद्र ! यही ठीक होगा।

द्रौपदी जा रही हूँ मैं आर्यपुत्र ! पर जो वे कहीं...उन्हें मूर्छा आये या वे अपने शस्त्र से अपना ही घात करना चाहें... .....
( द्रौपदी का प्रस्थान। शिविर के दायें रथ की ध्वनि होती है। )

धृष्टद्युम्न रथ वहीं रुक गया धर्मराज ! जैसे किरीटी किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

युधिष्ठिर सन्ध्या समय बराबर अभिमन्यु के सहारे जो रथ से उतरता रहा, पुत्र के मोहक मुख को देखकर जो समर के श्रम को भूलता रहा; वह आज भी उसकी बाट जोह रहा है पर वह अब कहाँ ?

धृष्टद्युम्न वासुदेव उन्हें हाथ पकड़ कर खींच रहे हैं पर वे तो रथ से उतरते नहीं ।

युधिष्ठिर अब क्या होगा भद्र ? कौन जाय वहाँ ? किसके मुख से यह बात निकलेगी कि अभिमन्यु इस लोक में नहीं हैं ?

धृष्टद्युम्न उतर तो गये पर जैसे आगे चलना ही नहीं चाहते । सब ओर घूम-घूमकर देख रहे हैं जैसे कुछ जानना चाहते हैं...वासुदेव इधर चलने को संकेत कर रहे हैं पर मेरु से अडिग होकर वे हिलते ही नहीं ।

(शिविर के भीतर से सात्यकी और भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन भीतर आ जायँ तात ! अर्जुन के सामने आज हममें किसी का खडा रह जाना, विन्ध्य का समुद्र में तैरना होगा ।

युधिष्ठिर (धृष्टद्युम्न से) चलो भद्र ! तुम भीतर । मुझे यहीं रहने दो ।

भीमसेन हठ नहीं । अर्जुन हम सबको एक साथ देखें और हम परन्तप के शोक और क्रोध में एक साथ डूबें या भस्म हो जायँ ।
(युधिष्ठिर का हाथ पकड़ कर शिविर में ले जाता है ।)

अर्जुन (नेपथ्य में) ठहरो मित्र ! देखने तो दो । क्या मेरी सेना, मेरे बन्धु, सखा, सहायक सब आज एक साथ जूझ मरे ? कहीं तो कोई नहीं दिखायी पड़ रहा है । यह सारे शिविर जैसे सूने हैं ।

कृष्ण (नेपथ्य में) धर्मराज कुशल से हैं कोई बात नहीं ।

अर्जुन (नेपथ्य में) तब किसका कुशल नहीं है, जिसके शोक में मेरे पक्ष के वीर शिविरों में अचेत पड़े हैं ! न कहीं चारण गा रहे हैं, न वैतालिक। विजय के मन्त्र भी कहीं सुनायी नहीं पड़ते। पुत्रवधू की वीणा आज क्यों मौन है ?... वासुदेव !

कृष्ण ( नेपथ्य में ) हाँ कहो...

अर्जुन (नेपथ्य में) कोई घोर अनिष्ट हुआ है मित्र ! कहाँ है आज अभिमन्यु ? आज मुझे रथ से उतारने क्यों नहीं आया ! एक-एक डग आगे बढ़ने में लग रहा है जैसे मैं अग्नि के समुद्र में प्रवेश कर रहा हूँ ..दिशाएँ जल रही हैं। ऐं...सारे शिविर घू-घूकर जल रहे हैं जैसे...धरती और आकाश जल रहे हैं। छोड़ दो मुझे यहीं...देख लो..जान लो पहले, तब मुझे बुलाओ।

कृष्ण (नेपथ्य में) चाहे जो हो, सुख-दुःख, जय-पराजय, जीवन और मृत्यु इन सब में लोक-विजयी कुन्तीपुत्र अर्जुन को अधीर नहीं होना है। सम-बुद्धि और अनासक्त वृत्ति से जो आ जाये, स्वीकार करना है। तुम्हारे अधीर होने का अर्थ होगा—पृथ्वी की धीरता का मिट जाना। लोक में जो कुछ भी महान् है, एक भी न टिकेगा तब...

अर्जुन कुम्हार के चक्के-सी नीचे की धरती घूम रही है !

(कृष्ण और अर्जुन का शिविर के सामने प्रवेश। दोनों एक साथ ही शिविर में देखते हैं।)

अर्जुन (उद्वेग में काँपते शब्द) नहीं हैं अभिमन्यु...यहाँ भी नहीं है वासुदेव !

कृष्ण भीतर चलो भद्र ! पूछें कहाँ हैं वह ? (अर्जुन को दृढ़ता से पकड़ कर कृष्ण का शिविर में प्रवेश) लक्षण तो बुरे लग रहे हैं। धर्मराज, भीमसेन, सात्यकी, धृष्टद्युम्न और भीम जो यहाँ बैठे हैं जैसे सभी पत्थर की मूर्तियों से अचल बने हैं। अभिमन्यु कहाँ है धर्मराज ?

अर्जुन (भरे कण्ठ से) अरे तुम सब बोलते क्यों नहीं ? देख लो वासुदेव ! नहीं है पुत्र अब, नहीं तो इन सब की यह दशा न होती। चला गया...चला गया...

कृष्ण हैं...हैं...क्या हो रहा है तुम्हें ? युद्ध के आरम्भ में जो मोह तुम्हें हुआ था उसी में फिर डूब रहे हो ? धीरज धरो, पूछने दो मुझे। नहीं तो फिर अभिमन्यु की बात छोड़ कर जीव और कर्म के गुण, धर्म और स्वभाव मुझे फिर कहने पड़ेंगे।

(अर्जुन का सिर कृष्ण के कन्धे पर टिक जाता है।)

युधिष्ठिर द्रोणाचार्य के चक्रव्यूह में पुत्र का निधन हुआ वासुदेव ! हम अभागों की मृत्यु न आयी, कुल का दीपक बुझ गया।

अर्जुन (तन कर खड़े होते हुए कठोर स्वर में) इतने वीरों के सामने अभिमन्यु का वध हुआ मान लूँ मैं यह ?...है यह बात विश्वास की.. ?

धृष्टद्युम्न जयद्रथ ने अचल पर्वत की तरह हमें व्यूह द्वार पर रोक दिया। न जा सके हम भीतर। लाख-लाख चेष्टा कर हार गये।

**अर्जुन** मतिभ्रम हो गया है तुम्हें। द्रोणाचार्य ने रोका, जयद्रथ ने नहीं।

**भीमसेन** नहीं भाई। द्वार-रक्षक जयद्रथ था। मेरुश्रृंग पर वायु का बल जैसे नहीं चलता......तट के पर्वत से समुद्र की लहरें जैसे हार जाती हैं.. न हिला...हमारे हिलाये जयद्रथ न हिला।

**सात्यकी** जहाँ-जहाँ बाहर से हमने मार्ग बनाया और भीतर से अपराजित अभिमन्यु ने...जयद्रथ सब कहीं पहुँच कर मार्ग रोक देता रहा। दिन भर हम यही करते रहे पर हमारी एक भी नहीं चली।

**अर्जुन** जयद्रथ किस माया से...किस बल से...किस वरदान से? तुम सब मिल कर मेरे पुत्र की रक्षा न कर सके। तुम्हारे शस्त्र शृङ्गार के लिए हैं। जाल में फँसे तरुण सिंह की तरह पुत्र मारा गया और तुम सब जी रहे हो? मरते भी नहीं बना तुमसे? कह दो जयद्रथ ने मरने भी नहीं दिया। तुम्हारा विधाता आज वहीं बन गया। विश्वास नहीं हो रहा है मुझे...

**युधिष्ठिर** जो कभी सुना नहीं गया था वही आँखों से देखा गया। जैसे भगवान् भूतनाथ जयद्रथ का रूप धर कर लड़ रहे थे।

**अर्जुन** अरे! ये सब प्रलाप कर रहे हैं वासुदेव! एक ही साथ सब को मतिभ्रम हो रहा है। आचार्य द्रोण, कर्ण, गुरुपुत्र की बात होती तो पल भर को विश्वास भी होता......पर यह

जयद्रथ दो हाथों से समुद्र कैसे पार कर गया ? इनके हीन पौरुष से पुत्र का वध हुआ और यह सब मिलकर जयद्रथ की प्रशस्ति गा रहे हैं। जिसका नाम आज तक रथियों में नहीं लिया गया, महारथी वह कैसे बन गया और वह भी एक साथ इतने वीरों को हरानेवाला ?

(सहसा अर्जुन का शरीर काँपने लगता है। सिर कृष्ण के कन्धे पर झुक जाता है।)

कृष्ण अरे ! तो तुम्हें मूर्छा आ रही है। कौन किसका पुत्र होता है और कौन किसका पिता ? जगत् के इस झूठे नाते में तुम-जैसा मनस्वी...हैं ! सम्भालो भीमसेन ! यह तो अचेत हो गये।

(कृष्ण अर्जुन को कस कर पकड़ लेते हैं। भीमसेन कन्धे से धनुष और कटिबन्ध से तूणीर निकाल लेता है। कृष्ण अर्जुन को लिये बैठ जाते हैं। द्रौपदी भीतरी द्वार से प्रवेश कर अर्जुन का सिर अपनी जाँघ पर ले लेती है। युधिष्ठिर, सात्यकी, धृष्टद्युम्न उद्वेग में आगे बढ़कर अर्जुन का मुख देखने लगते हैं।)

द्रौपदी (भरे कण्ठ से) आर्यपुत्र ! समर के इस अगाध समुद्र में जिसका ओर-छोर नहीं, इस झाँझर नैया को तुम भी छोड़ रहे हो।

अर्जुन (तन्द्रा के स्वर में) अ...भि...म..न्यु...

कृष्ण कोई कुछ न बोले ! परन्तप की मूर्छा से इनके जीवन का संकट टल गया। (थोड़ी देर सब मौन रहते हैं।)

अर्जुन (उसी दशा में) अन्धकार...सीमाहीन अन्धकार...

द्रौपदी हाय ! नाथ !

अर्जुन (चौंक कर) कौन पाञ्चाली ! तुम हाय कर रही हो, किस लिए ?

कृष्ण अभिमन्यु का ध्यान करो भद्र ! कहाँ है वह इस समय ? कुछ देख रहे हो ?

(अर्जुन के ललाट पर दायाँ हाथ रख देते हैं ।)

अर्जुन (तन्द्रा में) भगवान् विष्णु की मुस्कान का अमृत पी रहा है वह । माता लक्ष्मी अपने कण्ठ की माला उसके कण्ठ में डाल रही हैं ।

(क्षण भर सब ओर सन्नाटा)

अर्जुन (चेत में आकर द्रौपदी को देखते हुए) रो रही हो तुम पाञ्चाली ! अभिमन्यु हारा नहीं, वीर की सबसे महान् गति मिली उसे । तुम्हारे आंसू जो मेरे मुख पर गिरे, कल अग्नि बन कर शत्रुओं को भस्म करेंगे ? (उत्साह से उठते हुए) सच है धर्मराज ! यह बात ?

युधिष्ठिर इस नाम से मुझे अब घृणा हो गयी है बन्धु ? कान में यह जहाँ पड़ा कि सारे शरीर में काल-सर्प का विष व्याप्त हो जाता है ।

अर्जुन जो पूछ रहा हूँ वह कहो तात ! अभिमन्यु के वध का कारण जयद्रथ है ?

युधिष्ठिर शङ्कर के वरदान से उसने हम सब को व्यूह के बाहर रोक दिया । शत्रुओं के समुद्र में पुत्र अकेला डूबा ।

अर्जुन (वीरासन पर बैठ कर) द्रोणाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा से उसका पराक्रम अधिक था ?

युधिष्ठिर प्रलय का रुद्र बना था वह आज। उसके ललाट के त्रिपुण्ड से रुद्र का तेज निकल कर दिशाएँ जला रहा था।

अर्जुन तब तो उसके आगे आज मेरी भी न चलती—पुत्र की रक्षा मुझसे भी न हुई होती।

युधिष्ठिर तुम्हारे रहते पुत्र व्यूह में क्यों जाता...और भगवान् भूतनाथ के वरदान में तुम्हारे जीतने की बात भी नहीं थी। बस अकेले तुम्हें छोड़कर जयद्रथ त्रिलोकजयी बनने का वरदान पा चुका है।

अर्जुन इसीलिए शत्रु मुझे आज नित्य से दो योजन और दूर ले गये, जिससे इस प्रलय की सूचना मुझे न मिले। क्या होगा वासुदेव अब?

कृष्ण अपने अन्तःकरण से पूछो भद्र! जो स्वर वहाँ गूंज रहा है...जिस कर्म का आग्रह है...

अर्जुन (संकल्प के स्वर में) जयद्रथ के कारण पुत्र का वध हुआ, इस यज्ञ का प्रधान होता वही है, तुम भी यह मानते हो सात्यकी?

सात्यकी (भरे कण्ठ से) जयद्रथ से बड़ा कारण मैं स्वयं अपने को मानता हूँ। आपसे अधूरी विद्या लेकर जो वीर न बन गया होता; हिंसा-बुद्धि से समय के पहले ही आततायी बनने का मोह रोक पाता...तब तो चक्रव्यूह की कला मुझे आ गयी होती। आपने मना किया था तात! तब नहीं सूझा, अब सूझ रहा है। प्रियदर्शन अभिमन्यु के वध का पाप मेरे सिर है। (वेग से उठ कर अर्जुन के आगे धरती पर सिर रख देता है।)

अर्जुन (सात्यकी के सिर पर दोनों हाथ धरते हुए) मेरे हृदय का आधा शोक मिट गया सात्यकी। इस कार्य में हम दोनों समान अपराधी हैं ..शिष्य के आवेग को गुरु रोके...अधूरी विद्या न दे। तब तक रोक रहे जब तक ठीक-ठीक अपने साँचे में सब ओर से न ढाल दे। ( भीमसेन की ओर देखकर ) चारण कहाँ है तात ?

भीमसेन होगा कहीं...बैठा होगा कहीं छिपकर...जहाँ उसे कोई देख न ले।

अर्जुन ऐसा क्यों तात ?

भीमसेन शोक के समुद्र में उसका काम ही क्या है ?

अर्जुन यश और कीर्ति के मोती निकालेगा वह इसमें डूबकर। पुत्र की चिता में आग देने के पहले मुझे उसका गान सुन लेना है जिसमें विष्णु लोक-वासी अभिमन्यु के रूप का चित्रण हो, भगवान् विष्णु के अनुराग में जो रँगा हो, माता लक्ष्मी के हाथों की माला जिसके कण्ठ में हो।

भीमसेन ( उठकर ) अभी ले आता हूँ मैं उसे ?

अर्जुन पुत्र की देह तो ले आयें पहले। चलो मेरे साथ समरभूमि... वासुदेव ! इस कर्म में सारथी आप न बनें ?

कृष्ण समुद्र की लहरें जब बढ़कर आकाश चूम रही हों उस समय सार्थवाह नहीं बदलते।

धृष्टद्युम्न हो चुका है यह काम।

अर्जुन (चारों ओर देखकर) कहीं नहीं देख रहा हूँ मैं...

द्रौपदी पुत्र की देह जैसे यज्ञ की बुझी अग्नि हो। (शिविर के दूसरी ओर संकेत कर भरे कण्ठ से) यहीं धरी है।

युधिष्ठिर पुत्र के गिरते ही द्रोण ने युद्ध बन्द कर दिया। जयद्रथ द्वार से रथ हटाकर विश्राम करने लगा।

सात्यकी (उठकर खड़े होते हुए हाथ जोड़कर) मुझे कहने दें धर्मराज! आप वहाँ नहीं थे। (अर्जुन की ओर देखकर) जिस समय जयद्रथ आनन्द में रथ से उतर कर नाचने लगा...शत्रुओं के शङ्ख आकाश फाड़ने लगे, आचार्य ने मुझे अपने निकट आने का संकेत किया।

अर्जुन (उत्सुक होकर) हाँ तब...

सात्यकी पास आने पर कहने लगे, पुत्र का शव पिता को न ले जाना पड़े।

अर्जुन इसमें तुम्हें आचार्य की सहायता मिल गयी। कुछ और कहा उन्होंने..

सात्यकी कहा था कह देना अपने गुरु से शोक न करेंगे। उनका पुत्र व्यूह के गर्भ-मण्डल में पहुँच गया था।

अर्जुन आचार्य के शब्द हैं ये?

सात्यकी हाँ......

अर्जुन (विस्मय से) वासुदेव! सात चक्रमण्डल पार कर गर्भमण्डल में पहुँच गया था। आचार्य ने अपने मुँह स्वीकार कर लिया। क्यों सात्यकी ठीक है?

सात्यकी कानों ने जो मुझे धोखा न दिया, सुनने में जो मुझसे भूल न हुई,

आचार्य ने यही कहा था। विस्मय के भाव उनके अंग-अंग से चूने लगे थे। क्या-क्या कहते रहे वे...अभिमन्यु के विक्रम से देवता विस्मित हुए। मनुष्यों में जो देवता हैं उनकी बात कौन कहे। इस युद्ध की दो घटनाएँ कभी नहीं मिटेंगी। पितामह की बाणशय्या और चक्रव्यूह में अकेले अभिमन्यु का युद्ध।

**अर्जुन** आचार्य की कही बातें कह रहे हो तुम यह सब...

**सात्यकी** हाँ तात ! उनके मुख पर जो भाव थे...विस्मय और सन्तोष का रंग जो उन पर चढ़ा था वह मैं नहीं दे पा रहा हूँ।

**अर्जुन** (उत्साह में) तब कोई चिन्ता नहीं वासुदेव ! अभिमन्यु यश के शरीर में जीवित है, जीवित रहेगा, जिसके विक्रम से आचार्य विस्मित हैं। मृत्यु के वश में वह नहीं है। (द्रौपदी से) पुत्र-वधू का शृंगार करो देवी ! पुत्र उसकी राह देख रहा होगा।

**द्रौपदी** शिव...शिव

**अर्जुन** ऐं...क्या कह रही हो...अभी वह जीना चाहती है ?

**द्रौपदी** अन्धकार की इस कालरात्रि में प्रकाश की यही एक रेखा है आर्यपुत्र ! तुम्हारी पुत्र-वधू कुल में कल्याण के लिए अभिमन्यु का तेज अपने उदर में ढो रही है।

**अर्जुन** (गद्गद् कण्ठ से) जय बोलो वासुदेव ! सब एक साथ जय बोलो—'धर्मराज की जय' (सब एक साथ जय बोलते हैं।)

कृष्ण प्रलय के केन्द्र मे नयी सृष्टि का अंकुर फूटा है...अब तो इस नाम से तुम्हें घृणा न होगी धर्मराज ?

युधिष्ठिर आशा के इसी तन्तु पर अब हमको चलना है। पुत्र अपना प्रतिनिधि छोड़ गया है। हमारे पुण्य अभी भी शेष हैं।

कृष्ण शिविर के बाहर निकल कर शङ्ख फूंको भीमसेन ! जिसकी ध्वनि से चारण जहाँ कहीं हो खिचकर चला आये। वैरी के आनन्द का स्रोत सूख जाय।

अर्जुन मेरे मन में भी यही आया था। (भीमसेन शिविर के बाहर निकल कर शङ्ख फूंकता है जिसकी ध्वनि आकाश में देर तक गूंजती रहती है।) सुनें वासुदेव ! धर्मराज ! सुने, मेरे दल के सभी वीर सुनें, धरती सुने, आकाश सुने, आकाश के देवता सुनें जो मैं कल सन्ध्या तक जयद्रथ का वध न करूँ तो अग्नि में जल कर मर जाऊँ। सूर्य पिण्ड जब तक आकाश में रहेगा, जयद्रथ को यह लोक छोड़ना पड़ेगा। समर-भूमि से जो कहीं दूर जाकर छिप न गया, और छिपेगा भी कहाँ ? आकाश में मेरे बाण गरुड़ बनकर उसका ग्रास करेंगे...पाताल में सर्प बनकर उसे डसेंगे।

कृष्ण (आनन्द के वेग में) धन्य हो पार्थ ! तुमने अपने अनूप प्रतिज्ञा की है। ( सब ओर से साधुवाद सुनायी पड़ता है। )

अर्जुन धर्मराज के चरणों की शपथ है मुझे, तुम्हारे स्नेह की शपथ

है वासुदेव ! इन्द्र और यम, शङ्कर और विष्णु कल उसे मेरे क्रोध से न बचा सकेंगे ।

युधिष्ठिर वासुदेव की शरण छोड़कर उसकी रक्षा अब इस लोक में कहीं नहीं है ।

कृष्ण बस हो गया...यही होगा कल ।

अर्जुन और जो मेरे भाग्य में इस प्रतिज्ञा की पूर्ति न हो, अग्नि में जलकर मुझे मरना पड़े...तब मैं उस कुम्भीपाक सूचीमुख और रौरव में पड़ूँ, जहाँ संसार के घोर पापी जाते हैं। माता और पिता की हत्या करने वाले, गुरु और ब्राह्मण का वध करने वाले, गुरुपत्नी से गमन करने वाले, साधु-निन्दक और पर-स्त्री की कामना करने वाले जिस लोक में जाते हैं मुझे भी वही गति मिले ।

युधिष्ठिर ( आनन्द और उत्साह में भर कर ) तुम्हारी इच्छा से कल प्रलय होगी परन्तप ! जयद्रथ को तुम वैसे ही तोड़ फेंकोगे जैसे गजराज कमलदल को बिना प्रयास के उखाड़ फेंकता है ।

अर्जुन ( दोनों हाथ जोड़कर ) धर्मराज का धर्म मेरा कवच होगा। वासुदेव के प्रेम का अमृत पीकर शत्रुओं के दल में वैसे ही प्रवेश करूँगा तात ! जैसे आकाश में सूर्य प्रवेश करता है, बिना किसी बाधा के, बिना किसी भय के ।

(युधिष्ठिर आदि सभी शङ्ख फूंकते हैं। धरती-आकाश एक साथ ही हिल उठते हैं। चारण प्रवेश कर प्रणाम करता है ।)

कृष्ण आ गये तुम चारण !

चारण हाँ देव ! मैं आ गया ।

कृष्ण अपनी आँखों से देखे धरती का विक्रम तुम गाते रहे हो। स्वर्गवासी अभिमन्यु का विक्रम तुम गा सकोगे ?

चारण सरस्वती के घेरे के बाहर स्वर्ग भी नहीं है देव ! मुझे गाना क्या होगा ? भाव और रूप का संकेत आप दे दें। उसे मैं गीत में ढाल लूंगा।

कृष्ण क्या रहे चारण के गीत में पार्थ ! बता दो इसे ।

अर्जुन पुत्र को चिता में आग देते समय मन्त्रों के साथ चारण का गीत मेरे कान में पड़े बस यही इतनी मेरी कामना है । धर्म-राज के साथ भाव और विषय का निश्चय तुम कर लो मित्र !

कृष्ण उनका निश्चय तो तुम्हारी मूर्छा में ही हो गया था, भगवान् विष्णु की मुस्कान का अमृत अभिमन्यु पी रहा है, भगवती लक्ष्मी के हाथ की माला उसके कण्ठ में है। सुन लिया चारण तुमने ?

चारण हाँ देव ! सुन लिया। फिर भी धर्मराज और आपकी प्रेरणा में मेरे हृदय का कमल खिलेगा ।

अर्जुन वासुदेव और धर्मराज के साथ तुम यहीं रह जाओ। धृष्टद्युम्न और सात्यकी चिता की सामग्री में लगें। मैं पुत्र के वीर रूप का दर्शन करूँगा ।

कृष्ण मुझसे पहले तुम नहीं जा सकते हो ।

अर्जुन तब चलें कौन जाने वहाँ मेरे मन की गति क्या हो ?

कृष्ण शङ्कर के त्रिशूल, इन्द्र के वज्र, यम के दण्ड के घात से पुत्र-घात की तुलना नहीं हो सकती भद्र ! इस सृष्टि में इससे बड़ा घात किसी शस्त्र का कभी सुना नहीं गया। धर्मराज के साथ तुम तब तक विचार करो चारण। शिविर के दक्षिण जहाँ से रणभूमि देख पड़ती है, तुम लोग भी अपने काम में लग जाओ सात्यकी।

(अर्जुन और कृष्ण को छोड़कर सब का प्रस्थान)

अर्जुन भोर के चन्द्रमा-सी पुत्र की माता चली आ रही है, क्या कहना होगा वासुदेव।

कृष्ण भाई के सामने बहन का शोक पूर्णिमा के समुद्र-सा बढ़ता है। तुम रोको उसे। मेरे वश की बात यह नहीं है।

(आँधी में टूटी हुई लता-सी सुभद्रा का प्रवेश)

सुभद्रा ( रुँधे कण्ठ से ) पुत्र का मुख देखो आर्यपुत्र। ( कृष्ण की ओर देखकर ) लुट गयी......लुट गयी मैं...भाई। तुम्हारे रहते।

अर्जुन वीर पुत्र शोक का कारण नहीं होता देवी ! जन्म भर की तपस्या का फल जो नहीं मिलता...तुम्हारे पुत्र को वही मिला। सूर्यमण्डल के पार अक्षय स्वर्ग में राजर्षियों की मंडली पार कर विष्णु के अङ्क में तुम्हारे पुत्र का शीश है...माता लक्ष्मी के हाथ की माला उसके कण्ठ में पड़ रही है। इससे बड़े किस दूसरे फल की कामना कर रही हो तुम ?

( सुभद्रा अवाक् सी खड़ी रहती है )

कृष्ण माता की सबसे बड़ी कामना क्या है बहन।

सुभद्रा वीर पुत्र का जन्म देना भाई ।

कृष्ण वह फल तुम्हें मिल गया । तन के स्वार्थ को मिटाकर मन के गौरव का बोध करो...है कोई दूसरी माता जिसका भाग्य तुम्हारे सामने खड़ा हो ? सुना तुमने अर्जुन कल संध्या तक जयद्रथ का वध करेंगे ।

सुभद्रा ( **कांपते कण्ठ से** ) सो सुन चुकी ।

कृष्ण पति का संकल्प पूरा हो इसके लिए तुम्हें इष्टदेव की पूजा करनी है । कुल की भावी आशा जिस पुत्र-वधू के साथ लगी है इसकी रक्षा करनी है । शोक में यह सब तुम छोड़ न सकोगी, समझ रही हो ?

सुभद्रा अभी इतना भार मुझ पर है...( देह काँप रही है ।)

अर्जुन और इसे जब तक देह में साँस है तुम्हें ढोना भी है देवी ! चलो तुम पुत्र-वधू के पास...जब तक मैं वहाँ आऊं कुछ ऐसा करो कि उसके मन की गति संभल जाय और उसके पास क्षण भर खड़ा रहने का साहस मुझे हो ।

**(दोनों की ओर कातर दृष्टि से देखकर सुभद्रा का प्रस्थान । कृष्ण के साथ अर्जुन शिविर के पीछे निकल जाते हैं । बाहरी द्वार से सुमित्र प्रवेश कर रुक जाता है ।)**

कृष्ण (**नेपथ्य में**) वीर की देह पर आघात नहीं गिनते । इसे अपने पुत्र की देह न मानकर सोया हुआ वीर रस या फूला हुआ किंशुक का वृक्ष मानो ।

अर्जुन (नेपथ्य में) यही मुख है, यही ललाट, यही आँखें, नाक अधर, केश, बाहें और वक्षस्थल सब वही जिसे देखते मैं अघाता न था। जिसे जानता था जन्म-जन्म के पुण्य इस एक ठौर में जुट गये हैं।

कृष्ण (नेपथ्य में) सावधान। किस मोह में पड़ रहे हो तुम? जगत् के...धरती के इन सारे बन्धनों से छूटकर आत्मरूप अभिमन्यु आत्मलोक में पहुंच गया, जहाँ जाकर लौटना नहीं होता, वैर की अग्नि जहाँ नहीं जलती। चलो पुत्र-वधू को धीरज दो। मेरु के हिलने पर उस पर खड़े वृक्ष और लता कब टिकेंगे? चिता बन रही है, तब तक मैं चारण का गीत देख लूं।

(थोड़ी देर सन्नाटा रहता है। सुमित्र किसी इन्द्रजाल में पड़ा-सा सब ओर देखता है पर जैसे कुछ समझ नहीं पाता।)

युधिष्ठिर (प्रवेश कर) कौन है...सुमित्र। कितने घाव लगे हैं तुम्हें?

सुमित्र (हृदय पर हाथ रखकर) स्वामी का घाव इस हृदय में है देव। देह पर एक भी घाव नहीं। जब तक उनके हाथ में शस्त्र रहे...शत्रु के शस्त्र हमें छू न सके। शस्त्र न रहने पर, रथ के टूट जाने पर, रथ का चक्र लेकर वे लड़ने लगे और मैं समुद्र की लहरों से फेंके हुए तृण की भाँति किनारे पर पड़ा रहा। यमराज की आँखें मेरी ओर न उठीं। मृत्यु को भी मुझ अभागे की कामना न हुई। युद्ध-भूमि के कोने-कोने

में भटकता रहा हूँ। चेत न रहा कि कौन हूँ, कहाँ जा रहा हूँ। पितामह की बाणशय्या की ओर निकला, वहाँ उनके रक्षकों ने बैठाकर जल पिलाया।

युधिष्ठिर पितामह जान गये कि तुम अभिमन्यु के सारथी सुमित्र हो?

सुमित्र हाँ तात! उनके निकट जो न हो सका...वह पता नहीं कहाँ होगा। अपने बल से नहीं, उन्होंने जो कुछ सुनाया उसी बल से यहाँ आ सका हूँ।

युधिष्ठिर हमारे लिए कुछ नहीं कहा उन्होंने?

सुमित्र कुमार के दाह-कर्म से निवृत्त होने पर आप सबको उन्होंने बुलाया है, आज ही...जितनी जल्दी हो...स्वामी की माता के साथ आपकी पुत्र-वधू भी उनके आशीर्वाद को जायेंगी।

युधिष्ठिर अब तुम कहाँ जाओगे?

सुमित्र नहीं जानता। सपने में कुमार जो आदेश देंगे मुझे वही करना होगा।

भीमसेन (नेपथ्य में) धर्मराज को सूचित करो सात्यकी। पुत्र की अन्त्येष्टि में सम्मिलित हों।

युधिष्ठिर चलो मेरे साथ तुम वहीं।

सुमित्र बस इतना इन आँखों से न देखूं। दिन भर जो मैं देखता रहा आप में कोई न देख सका।

युधिष्ठिर अच्छी बात आज से तुम मेरे शिविर में रहोगे।

सुमित्र पितामह की बाणशय्या के निकट आज अन्तिम बार आपके दर्शन कर लूँगा...या आप जब कभी वहाँ जायेंगे...मुझे यह लाभ मिलेगा। जब तक उनके कण्ठ में प्राण है मेरी जगह उनकी शय्या के निकट है। आगे की भगवान् जाने।

( दोनों का दो ओर प्रस्थान। नेपथ्य में मन्त्रों की ध्वनि सुन पड़ती है। शङ्ख और तूर्य बज उठते हैं। चारण गाने लगता है—)

गीत

अगम गति अमर की समर में मिली।
लोकपति के अधर की सुधा में बिखर
इन्दिरा के करों की कला में निखर
पार्थनन्दन ! तुम्हारी जो माला हिली !
अगम गति अमर की समर में मिली।

(गीत के स्वर में वीरों का उल्लास गूंज उठता है।)

———

# परिवर्तन

[ रात्रि । समरभूमि भयानक हो उठी है । अन्य जीवों की ध्वनि रह-रह कर सुन पड़ती है । एक ओर भीष्म की शर-शय्या, जिस पर भीष्म खुली आँखों से आकाश देख रहे हैं । शर-शय्या के चारों ओर स्थान-स्थान पर अग्नि में काठ के कुन्दे जल रहे हैं, इसलिए कि वन्य जीव इधर न आयें और शर-शय्या बराबर प्रकाशित रहे । क्षितिज के ऊपर चन्द्रमा चढ़ चुका है, जिसकी किरणों में समर-भूमि कहीं श्वेत और कहीं पीली दीख पड़ती हैं । सुमित्र भीष्म के पैताने की ओर हठ कर अग्नि के प्रकाश में खड़ा है । ]

द्रोणाचार्य ( प्रवेश कर ) महात्मा देवव्रत को सूचना दो प्रहरी !

सुमित्र आप कौन हैं...?

द्रोणाचार्य ( विस्मय में ) तुम मुझे नहीं जानते । अर्जुन और सुयोधन दोनों पक्ष के शस्त्र-गुरु द्रोण का नाम तुमने नहीं सुना ?

सुमित्र (चौंककर) प्रणाम आचार्य ! अपराध क्षमा हो ।

द्रोणाचार्य शतायु बनो ! किस पक्ष के हो तुम !

सुमित्र अब किसी पक्ष का नहीं आचार्य ! पक्ष के लिए भी कोई सहारा होता है और वही आज मिट गया ।

द्रोणाचार्य तुम्हारी आकृति पर्वतीय—सी लग रही। किस खण्ड के निवासी हो...तुम यहाँ कैसे आये ?

सुमित्र (दुःख की हँसी) विराट जन हूँ मैं आचार्य ! राजकुमार उत्तरा के यौतुक में इन्द्रप्रस्थ आया।

द्रोणाचार्य अरे ! आज दिन में तुम्हें देखा था अभिमन्यु के रथ पर। नर-सिंह अभिमन्यु के सारथी तो तुम नहीं हो ?

सुमित्र जी...कभी था पर अब कहाँ हूँ ?

द्रोणाचार्य अब समझा दुःख के वेग में तुम मुझे पहचान न सके।

सुमित्र वह अधिकार...मुझे नहीं है आचार्य ? स्वामी के मृत्यु में भी सेवक रो नहीं सकता। रोने वाले कुल और शील में समान होते हैं। दुःख भी हमारे भीतर से बाहर नहीं जा सकता। भाग्य का खेल था विराटपुत्र का रथ हाँकने वाला इस समर में उस योग्य माना गया...जहाँ सारथी में भी रथी के गुणों की परीक्षा होती है।

द्रोणाचार्य तुम्हारी आकृति और भाव-मुद्रा से विषाद की लपटें निकल रहीं हैं। देख रहा हूँ जीवन की कामना तुम छोड़ चुके हो। लोक में तुम्हारे लिए अब कोई आकर्षण नहीं है। अर्जुन से तुम्हारी भेंट हुई थी।

सुमित्र जी नहीं...

द्रोणाचार्य तुम्हारा कोई अपराध नहीं, रथ चलाने में तुम्हारा कौशल कृष्ण से होड़ ले रहा था। फिर भी नियति का विधान कैसे रुकता ? भय का कारण तुम्हारे लिए कोई नहीं है। अर्जुन

तुम्हें सान्त्वना देता और तुम्हें अब क्या करना है इसका आदेश भी...

सुमित्र ( यमराज का भय भी मुझे अब नहीं है...जो सारा दिन अपनी खेती काट कर भी मुझे छोड़ गया। जहाँ सब ओर शस्त्र बरस रहें थे मैं चाहता ही रहा कोई गदा मेरे सिर पर गिरे, कोई भल्ल मेरे हृदय के पार हो, कोई असि मेरे कण्ठ से लिपट जाय...यह कुछ नहीं हुआ! हाट उठ गयी, जानेवाले चले गये और मैं जहाँ था वहीं रह गया। पितामह जो मुझे भेज कर धर्मराज को सन्देश न देते तो मैं उधर जाता भी नहीं। कुमार का साथ छोड़कर जो मैं अभी इस धरती से बँधा हूँ मेरा मन इसे अपराध मान रहा है। आप जो कहें।)

द्रोणाचार्य ( मन्द हँसी ) इच्छामात्र से कोई मर नहीं सकता पागल! मनुष्य के कर्मों की परिधि होती है; जिसमें उसे होता है घूमना। चलो तुम आगे पितामह को सूचित करो।

सुमित्र ध्यान टूटने पर वह नित्य की भाँति शङ्कर का नाम लेंगें और तब आप चलें। यही आदेश है मुझे।

द्रोणाचार्य कुछ लोगों के आने की आहट मिल रही है तुम्हें...हाँ लगता है धर्मराज आ रहें हैं। इधर से उन्हीं का मार्ग है।

सुमित्र जी...लगता है कि...

द्रोणाचार्य अभी एक पुरुष का आकार...हाँ, दूसरा तो कोई नहीं दीखता...धर्मराज!

अर्जुन मैं हूँ आचार्य ( **प्रवेश कर चरणों में झुकता है। फिर उनकी ओर देखते हुए** ) प्रसन्न होंगें आचार्य! आप।

द्रोणाचार्य तुम जैसा समर्थ शिष्य पाकर मैं अपना भाग्य देवगुरु से कम नहीं मानता।

अर्जुन व्यूह की सफलता की ओर संकेत है मेरा।

द्रोणाचार्य हाँ...हाँ...यह समझ कर कहा मैंने और जो तुम्हें यह भी सुनना हो कि मैं अभिमन्यु की मृत्यु से प्रसन्न हूँ...तुम्हारा संकेत इस ओर हो तो पता होगा तुम्हें कि अभिमन्यु और लक्ष्मण एक साथ मरे, जिनके भीतर परस्पर उस अन्त समय में भी क्रोध और घृणा के भाव नहीं आये। लक्ष्मण का पहले जाना अभिमन्यु के लिए असह्य हो उठा। उनका बन्धुभाव उस लोक में भी चलेगा। मनुष्य के भीतर देवत्व का दर्शन केवल सुख देता है पार्थ !

भीष्म शङ्कर...शिव शङ्कर...

सुमित्र हाँ अब चलें। पितामह का ध्यान टूट गया।

अर्जुन सुमित्र ! अभी तुम जी रहे हो, शिविर में क्यों नहीं आये ? पुत्र-वधू बार-बार तुम्हे स्मरण कर रही है।

सुमित्र इसी डर से नहीं गया। राजपुत्री राजकुमार के युद्ध की बातें पूछेंगी। कैसे कहूँगा; किन शब्दों से, आँख से देखी बात मुँह से कैसे निकलेगी ? एक-एक कर वे सभी दिन याद पड़ रहे हैं तात ! जब बालक था, राजकुमारी के क्रीड़ा-कन्दुक के पीछे दौड़ना...हरिण और मोर के साथ खेलना, फिर राजकुमारी का सारथी और राजकुमार के साथ उनके विवाह के कार्य और अन्त में वामन जैसे विराट् बन गये, मुझ हीन का

उनका सखा और सारथी बन जाना। क्या-क्या चल रहा है इस मन में...

अर्जुन जाना तो पड़ेगा तुम्हें

सुमित्र (हाथ जोड़कर) अब नहीं तात! मेरे मन की शान्ति पितामह की छाया में इस बाणशय्या के पास है। जब यह न रहेगी कोई न जानेगा सुमित्र कहाँ गया।

अर्जुन अरे! पुत्र-वधू के निकट तुम न जाओगे, जन्म भर उसके संसर्ग में रह कर?

सुमित्र मुझे देखकर उनका दुःख और बढ़ेगा, अच्छा हो वे यही जाने की मैं भी साथ ही गया, उस लोक में भी मैं उनका सारथी हूँ।

द्रोणाचार्य पितामह के पास चलो भद्र! सुमित्र के प्राण भी अभिमन्यु के साथ चले गये...तुम्हारे सामने उसका प्रेत खड़ा है।

(अर्जुन और द्रोणाचार्य बाणशय्या की ओर बढ़ते हैं।)

सुमित्र (शय्या के निकट पहुँचकर) आचार्य द्रोण और महात्मा अर्जुन आ गये।

भीष्म आसन धरो।

अर्जुन (पैरों के निकट झुककर) प्रणाम तात! तपःपूत इस भूमि से बढ़कर दूसरा आसन मुझे नहीं चाहिए।

भीष्म जयजीव वत्स! आचार्य कहाँ हैं?

द्रोणाचार्य यहीं हूँ महात्मन्!

भीष्म सेवक का प्रणाम स्वीकार हो भूदेव!

द्रोणाचार्य समाधिस्थ शङ्कर को आशीर्वाद देने का अधिकार तब तो है

मुझे ! आयु और शस्त्र दोनों में पिता तुल्य होकर जो आप मुझे प्रणाम करें।

भीष्म — विष्णु ने भृगु को प्रणाम किया था। जन्म-जन्म के इस संस्कार को...

द्रोणाचार्य — नरयोनि में आपका यह पहला जन्म है।

भीष्म — (मन्द हँसी) यह भी आप ही कह सकेंगे, नरयोनि में जन्म लेकर एक जन्म से सन्तोष क्यों नहीं होता ? कम से कम आप आसन पर बैठें।

द्रोणाचार्य — दोनों पक्ष आज निराहार रहकर भूमि-शयन करेंगे यह तो आप जानते हैं ?

अर्जुन — और क्या होगा तात।

भीष्म — जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा तुम निराहार रहकर पूरी करोगे ?

अर्जुन — जी......सिन्धुराज आहार करेगा और मैं..आपके कुल के सभी जन ऐसे ही रहेंगे।

भीष्म — जीवन भर में आज एक कामना आयी मन में दैव ने वह भी न होने दिया।

द्रोणाचार्य — सुन चुका हूँ अभिमन्यु और लक्ष्मण के अनुराग में आपकी आँखों से जल चला था। आज के युद्ध से दोनों विरत रहें, उन दोनों के शीश पर हाथ रख कर भरे कण्ठ से आपने कहा था।

अर्जुन — (उद्वेग में) आचार्य। क्या सुन रहा हूँ ?

द्रोणाचार्य — संसप्तक-युद्ध में तुम्हारे चले जाने के बाद दोनों संयोग से

एक ही समय पितामह के पास आये और तभी यह बात हो गयी ।

अर्जुन नियति की गति यही थी तात !...

भीष्म कामना से सदैव मुक्त रह कर इस बन्धन में मैं आज पड़ा क्यों ? विधाता के किस धर्म की तुष्टि थी इसमें ?

द्रोणाचार्य यह सृष्टिचक्र मनुष्य की इच्छा से नहीं चल रहा है, इसका चलानेवाला दूसरा है, आप जानते हैं । सूत्रधार जब जिस पुतली को जहाँ नचाये...

भीष्म विस्मय होगा आपको यह सुनकर...मेरे भीतर अब दूसरी कामना भी जाग उठी ।

द्रोणाचार्य कौन जाने उसका फल क्या होगा ?

अर्जुन हाँ तात ! उसे सुनने का पुण्य तो कानों को मिले, फल तो अपने वश में है नहीं ।

भीष्म धर्मराज और सुयोधन दोनों आ जायँ । हो सकता है, सुयोधन मेरी बात न मानें, धर्मराज से तुमसे भी ऐसा होना कठिन नहीं है ।

अर्जुन कौन नहीं मानेगा आपकी बात तात ! तब यह धरती रसातल में जा लगेगी ।

भीष्म आशीर्वाद दें आचार्य ! मेरी यह एक कामना पूरी हो जाय ।

द्रोणाचार्य इस बार मनोरथ आपके पीछे चलेगा, आकाश के ग्रह-पिण्ड आपके आदेश का उल्लंघन इस बार न करेंगे और कुरुराज आ भी गये ।

सुयोधन (प्रवेश कर) प्रणाम तात ! आचार्य आपको भी...

भीष्म तुम्हारा यश बढ़े वत्स ! दूसरे किसी आशीर्वाद की इच्छा तो अब तुम्हें होगी नहीं।

द्रोणाचार्य मैं तो यह आशीर्वाद भी नहीं देता। अभिमन्यु के अन्तकाल में सुयोधन का जो यशस्वी रूप मैंने अपनी आँख से देखा, उसके आगे यश की कामना भी न होगी।

भीष्म क्या कह रहे हैं !

द्रोणाचार्य जिस समय अभिमन्यु धरती पर गिर पड़ा...आततायी गदा लेकर मारने दौड़ा, उस समय ये दौड़ पड़े थे अभिमन्यु की रक्षा में। इनके पहुँचने के पहले ही गदा का प्रहार मस्तक पर हो चुका था। लक्ष्मण का निधन भूल कर अभिमन्यु का शीश ये अपने अङ्क में लेकर बैठ गये। यह दृश्य देवताओं के देखने योग्य था पितामह ! जिस किसी ने वह दृश्य अपनी आँखों से देखा क्षण भर के लिए देवता बन गया।

भीष्म तब तो मेरी कामना पूरी हो गयी आचार्य ?

अर्जुन (सुयोधन को लक्ष्य कर) भाई ने अपने शत्रु पर स्नेह दिखा कर...

सुयोधन अब हम लोग शत्रु नहीं हैं किरीटी ! अभिमन्यु और लक्ष्मण ने अपनी बलि देकर शत्रुता की उस अग्नि को बुझा दिया है। हमें तो अब केवल लोक के रंग-मंच पर अपने कर्म का अभिनय करना है। युद्ध नहीं रुकेगा। भाग्यवान् वीरगति लेंगे और अभागों को मिलेगा इस धरती का राज्य।

अर्जुन साधु ! साधु ! युद्ध रोकने की बात न कहेंगे पितामह !

भीष्म नहीं वत्स ! तुम लोग कल शस्त्रों से इस समूची सृष्टि को मिटा दो और हो सके तो तुम भी मिट जाओ। दोनों राजकुमारों की मृत्यु के बाद युद्ध रोकने की बात कहना ऐसा अधर्म होगा, जो हिमालय से भारी और समुद्र से अगाध है। मेरी कामना दूसरी ही है और वह अब पूरी भी हो चुकी।

द्रोणाचार्य विलम्ब न करें महात्मन् ! अब कह दें। आपकी कामना का अनादर सुयोधन और अर्जुन से न होगा।

सुयोधन
अर्जुन } कभी नहीं।

भीष्म तो फिर कहूँ मैं...

(सभी एक साथ हाँ करते हैं।)

भीष्म भगवान् की कृपा से कुरुवंश की लीक नहीं मिटी, युद्ध का फल जो हो। मेरे सामने कुल के भविष्य में सभी आशावान हों।

सुयोधन किस तरह तात ! अभिमन्यु और लक्ष्मण के साथ ही वह आशा मिट गयी। लक्ष्मण का विवाह नहीं हुआ था, किरीटी की पुत्रवधू अब विधवा है।

भीष्म कुल के मंगल की बात कह दो अर्जुन ! अब...कुरुराज नहीं जानते।

सुयोधन ऐं...तो...

अर्जुन (सुयोधन से) अभिमन्यु अपना प्रतिनिधि छोड़ गया है भाई। पुत्रवधू उसका अंश ढो रही है।

सुयोधन सुखी हूँ यह सुनकर मैं भद्र ! कुलनाश के पाप से हम सब बच गये।

भीष्म सुन लें आचार्य ! अब मेरी कामना। अभिमन्यु और लक्ष्मण को जिन देवियों ने जन्म दिया, उन दोनों के बीच में राजवधू उत्तरा बैठे...दोनों के हाथ उसके शीश पर रहें...मन और चित्त से दोनों कुल के भावी मंगल की कामना महादेव से करें।

सुयोधन (उत्साह से) जय हो तात ! धधकती हुई वनस्थली के ऊपर जैसे मेघ अमृत की वर्षा करें ..आपकी यह कामना वैसे ही है...उससे भी मोहक और महान्। आपकी बाणशय्या के निकट देवियाँ नहीं आ सकतीं। (**सामने की ओर हाथ उठा कर**) राजमहिषी आदेश के लिए आँचल पसारे वहीं खड़ी हैं।

भीष्म शेष कार्य अब आपसे होगा आचार्य !

द्रोणाचार्य शस्त्रजीवी ब्राह्मण इस कार्य के अनुकूल होगा ?

भीष्म शस्त्र और शास्त्र बराबर लोकधर्म की दोनों बाहें या दो आँखे रहे हैं। शस्त्र से शास्त्र की रक्षा और शास्त्र से शस्त्र की गति बराबर बनी रही है। रात्रि का अन्धकार इस आशा में मिटता रहा है आचार्य ! कि कल फिर सूर्य का उदय होगा...अब आप जायँ, तुम दोनों भी जाओ वत्स ! इस कार्य का सम्पादन करो। तुम्हारी परम्परा बनी रहे। यह कामना तुम सबकी हो। कुलदेव इसमें सहायक हों। तुम भी जाओ सुमित्र ! जिससे मेरा मन अपनी कामना के रंग में रंग उठे। (**एक साथ सबका प्रस्थान**)

अर्जुन (चलते-चलते) राजमहिषी की सेवा में चलूं आचार्य ! भाई अनुजपत्नी और पुत्रवधू को लेकर आयें।

सुयोधन ऐसा क्यों ? वहीं चलें, कुल लक्ष्मी के स्वागत में।

अर्जुन ना...यह नहीं होगा आचार्य ! राजरानी पद और आयु दोनों में बड़ी हैं...जहाँ हैं वहीं रहेंगी।

द्रोणाचार्य (सुयोधन से ) मान जाओ यह मनुहार भद्र ! यही जो पहले हुआ होता...

अर्जुन तब भी मृत्यु किसी दिन आती। भूमण्डल के वीर तब रक्त से इस भूमि का इतिहास न लिखते। कोई नहीं जानता उन्हें।

सुयोधन इस समय मैं जिस सम्मोहन में हूँ...कुछ भी कर सकता हूँ पार्थ ! चाहो तो प्राण भी माँग लो। केवल यह युद्ध होगा, यह न रुकेगा, चाहे इसकी कामना स्वयं पितामह करें।

अर्जुन अब किस लिए भाई ! अब तो हमें केवल समर के लिए कर्म करना है। इस दारुण युद्ध का फल यही हो कि इस भूमि में जो जन्म लें जीवन के मोह में फँस कर कायर न बनें। नहीं तो एक साथ जितने वीर यहाँ मरे और मरेंगे, उन सबका धर्म डूब जायेगा। भारत का पवित्रतम कर्म बराबर...

द्रोणाचार्य (मन्द हँसी) महाभारत रहे क्यों भद्र ?

अर्जुन हाँ आचार्य ! इस भूमि में जिनका जन्म हो, हमारी जाति जब तक इस भूमि से बँधी रहे...गंगा, यमुना, सिंधु, सरस्वती की धारा जब तक इस भूमि पर चलती रहे, हिमालय का शीश

जब तक ऊपर रहे, यह युद्ध लोक-चेतना का सबसे प्रधान वाहक बने ।

द्रोणाचार्य यही होगा परन्तप ! हमारी भावी परम्परा को यह युद्ध सदैव बल देता रहेगा ।

अर्जुन सुमित्र ! तुम भाई के साथ जा कर माता और बहन को यहीं ले आओ, (सामने हाथ उठा कर संकेत करता है) राजरानी को मैं चल कर सब कह देता हूँ ।

द्रोणाचार्य मैं किस ओर भद्र !

अर्जुन जिधर आप अब तक रहे हैं । भाई से अलग आप अब एक ही दिन होंगे ।

द्रोणाचार्य वह दिन भी निकट हैं...

अर्जुन कल जयद्रथ से मुक्त होकर परसों आप से भी मुक्त हो सकूँ आचार्य ! यही आशीर्वाद दे सकें, तो दें ।

द्रोणाचार्य तथास्तु ! और कुछ...

अर्जुन अब कुछ नहीं ।

सुयोधन आचार्य की अवधि बस परसों तक है ?

द्रोणाचार्य तम जानते हो अर्जुन पर मेरा स्नेह तुम सबसे अधिक है । अर्जुन को शिष्य रूप में पा कर मेरा जो गौरव बढ़ा, जिसका प्रतिद्वन्द्वी कहीं कोई न रहे, इसीलिए तो एकलव्य का अगूँठा मैंने गुरु-दक्षिणा में ले लिया, तो फिर ऐसा यशस्वी शिष्य आशीर्वाद में जब मेरा प्राण माँग रहा है तो मैं उसे नहीं कैसे कहूँ ? जब तक मेरे हाथ में धनुष रहेगा...

अर्जुन जानता हूँ आचार्य तब तक यह सम्भव न होगा।

द्रोणाचार्य जब चाहना कह देना, मैं धनुष रख दूँगा।

अर्जुन गुरुपुत्र के न रहने पर तो धनुष रख देने का संकल्प आपका पहले से है।

द्रोणाचार्य (दोनों कानों पर हाथ रखकर) यह बात पहले से न कहो भद्र ? पुत्र का शोक उसके रहते न दो मुझे।

अर्जुन आप जानते हैं मेरे वश का कुछ नहीं, होनहार जो करे, कराये। जिस अग्नि की कल्पना आपके लिए असह्य हो रही है वह मेरे भीतर जल रही है। मनकी इस दशा में जो कुछ कह गया, उसे आप भूल जायें।

सुयोधन आचार्य के साथ समाधान का समय अभी है बन्धु ? कल रणभूमि में तुम्हारी इनसे फिर भेंट होगी। इस समय पितामह की कामना पूरी करनी हैं तुम्हें।

(द्रोणाचार्य, सुयोधन और सुमित्र आगे की ओर बढ़ते हैं, जहाँ सुमित्र पहले खड़ा था। अर्जुन दायीं ओर निकल जाता है। युधिष्ठिर का प्रवेश।)

युधिष्ठिर प्रणाम आचार्य ! (सुयोधन को ओर से मुँह फेर लेते हैं।)

द्रोणाचार्य इस समय तुम दोनों में बैर नहीं है ? तुम नहीं जानते पितामह ने अभी क्या कर दिया ?

युधिष्ठिर ( उत्सुक हो कर ) अब कोई क्या करेगा आचार्य ! अब तो हम सब प्रलय के केन्द्र में खड़े है।

सुयोधन प्रलय के बाद सृष्टि और फिर प्रलय, जगत का यही क्रम है

धर्मराज ! विलम्ब न करें आचार्य ! क्या करना है धर्मराज से कह दें ।

**द्रोणाचार्य** सुनो धर्मराज ! चित्त को शान्त कर सुनो । अर्जुन राज-महिषी भानुमती के पास गये हैं । तुम्हारी पुत्र-वधू और अनुजपत्नी को भी वहीं जाना है ।

**युधिष्ठिर** पितामह की शय्या के पास ?

**द्रोणाचार्य** (एक ओर हाथ उठाकर) नहीं...नहीं...शय्या के निकट नारी कैसे जायेंगी ? राजमहिषी वहाँ हैं किरीटी के साथ ।

**युधिष्ठिर** किरीटी के साथ ?

**द्रोणाचार्य** विस्मय न करो भद्र ! पितामह की कामना है, अभिमन्यु और लक्ष्मण को जिन देवियों ने जन्म दिया, उन दोनों के बीच में तुम्हारी पुत्र-वधू बैठे । दोनों उसके सिर पर हाथ धर कर भगवान शङ्कर से उसके पुत्र के मङ्गल की याचना करें ।

**युधिष्ठिर** (सुयोधन की ओर देखकर) भला वे मानेंगी यह ?

**सुयोधन** मैं मान चुका हूँ धर्मराज ! हमारे कुल का सहारा अब दूसरा क्या है ? कहाँ हैं वे लोग ?

**युधिष्ठिर** ( पीछे की ओर हाथ उठाकर ) भीमसेन के साथ वहीं रोक दिया । पितामह के चारों ओर अग्नि-मण्डल है उसके भीतर बिना उनकी आज्ञा के...

**सुयोधन** चलो सुमित्र ! देवियों को साथ लेकर वहाँ पहुँचो । आचार्य के साथ मैं आ रहा हूँ । धर्मराज न हो तो पितामह के पास चलें । (सुमित्र का प्रस्थान)

युधिष्ठिर पितामह ने कुल-देवियों को तब इसीलिए बुलाया था। कुल का भविष्य मंगलमय हो, यह बात मेरी समझ में तब न आयी। बाणशय्या पर भी कुल के भविष्य की चिन्ता उनके भीतर से नहीं गयी थी। मुझे जाना पड़ेगा वहाँ अब। भीमसेन कहीं सुमित्र की बात न माने।

सुयोधन अर्जुन ने यह भार मेरे कन्धे पर डाल दिया है धर्मराज ! अन्त तक मुझे ही ढोना है उसे। भीम के हाथ में गदा तो न होगी ?

युधिष्ठिर पितामह के पास हम लोगों की भेंट नित्य रात को होती रही है। वहाँ शस्त्र लेकर कोई नहीं आता। कोई बात नहीं, जिस फल के लिए युद्ध छिड़ा वह जितनी जल्दी मिले।

(सुयोधन का प्रस्थान)

सुयोधन (नेपथ्य में) वहाँ पहुँचकर आपको मैं बुला लूँगा आचार्य !

द्रोणाचार्य अच्छा भद्र !

युधिष्ठिर तो क्या पितामह आगे युद्ध रोकने की बात भी कहेंगे ?

द्रोणाचार्य नहीं, युद्ध अब और दारुण होगा। कुल की रक्षा हो गयी, पितामह को सन्तोष इसी में है।

युधिष्ठिर मैं तो सोच नहीं पाता था आचार्य ! देवियाँ किस लिए बुलायी गयी हैं। एक बार मन में बिजली-सी चमक गयी, भास हुआ कि कुल के मङ्गल के लिए कदाचित् वे अपना व्रत तोड़कर पुत्र-वधू को आशीर्वाद देंगे।

द्रोणाचार्य वही बात तो हुई। सात्विक वृत्ति में जो होने को होता है, पहले से ही भासित हो उठता है।

युधिष्ठिर अभिमन्यु के अन्त का आभास तब मुझे क्यों नहीं हुआ ?

द्रोणाचार्य अवश्य हुआ होगा...रोकने से रुके, तो होनहार क्या ? दैव की इस विचित्र गति पर मनुष्य का वश नहीं है भद्र ! पर्वत शिखर से गिरकर, समुद्र के अतल में डूबकर लोग बच गये हैं, यह भी सुना है कि फूल सूँघने में लोग मर भी गये हैं। दैव से रक्षित सब ओर से अरक्षित होकर भी बच जाता है, और दैव जिसे नहीं बचाता उसकी रक्षा के सारे कार्य असफल होते है।

युधिष्ठिर सुयोधन तो आज पहचाने नहीं जाते आचार्य ! क्या हो गया इन्हें ?

द्रोणाचार्य अपनी आँखों जगत् का संहार जो एक बार देख लेगा, वह फिर वही नहीं रहेगा जो पहले था। विश्वास नहीं होगा तुम्हें, लक्ष्मण के मारे जाने पर भी अभिमन्यु को बचाने सुयोधन दौड़े थे...तब तक पापी की गदा मस्तक पर पड़ गयी फिर भी अभिमन्यु का सिर अपनी गोद में लेकर बैठ गये थे। कर्ण को मतिभ्रम-सा हो गया, मुझे भी अपनी आँखों पर विश्वास नहीं होता था।

युधिष्ठिर यह सुनकर तो मन होता है आचार्य ! धरती फट जाती और मैं उसी में समा जाता। इस सारे संहार के मूल में एक नारी का अभिमान है।

द्रोणाचार्य पुरुष के सब से प्रधान कर्म समर के मूल में बराबर नारी रही है और जब तक यह सृष्टि चलेगी और जब कभी युद्ध होगा, कारण नारी रहेगी।

सुयोधन (नेपथ्य में) अब चलें आचार्य !

द्रोणाचार्य आया भद्र !

( द्रोणाचार्य का प्रस्थान । भीमसेन का प्रवेश )

भीमसेन यह क्या हो रहा है तात ?

युधिष्ठिर देखते चलो जो हम पहले से जानते, तब तो कुछ होता ही नहीं । जब हमें सब जान लेने की शक्ति मिल जायगी तब यह विश्व-प्रपञ्च मिट गया रहेगा ।

(भीमसेन सन्देह में सब ओर देखते हैं)

युधिष्ठिर किस चिन्ता में पड़ गये ? चलो पितामह के पास तुम्हारा समाधान वहाँ होगा ।

भीमसेन नहीं तात ! जो कहीं वह...भला उसका विश्वास...

युधिष्ठिर तुम्हारा विश्वास उसने पहले किया, न करना था उसका विश्वास ।

भीमसेन उसे देखते ही मुझे क्रोध न चढ़ा । मुद्रा और आकृति में, वाणी और दृष्टि में कौन-सा सम्मोहन भर गया था, कि मैं रोक न सका ।

युधिष्ठिर तुम्हारे प्रति उसके भीतर कोई अपकार नहीं था, होता तो तुम देख लेते ।

भीमसेन तब तो मैं अपने जीवन के सबसे बड़े विस्मय को अपनी आँखों देख लूँ ।

युधिष्ठिर परमात्मा का आसन हिलता है भीमसेन ! यह न भूलना । ( भीमसेन का प्रस्थान । युधिष्ठिर बाणशय्या के निकट आ जाते हैं ।)

भीष्म धर्मराज !

युधिष्ठिर हाँ...तात !

भीष्म गोपाल नहीं आये ?

युधिष्ठिर उनके लिए आदेश तो नहीं था।

भीष्म बिना किसी शस्त्र के इस युद्ध के अकेले संचालक किसी दिन इस सृष्टि के संचालक कहे जायेंगे धर्मराज ! जब कभी वे कृपा कर यहाँ आ जाते हैं...बाणों की पीड़ा मिट जाती है जैसे शिव के ध्यान में कभी-कभी उनकी मूर्ति देखने लगता हूँ।

युधिष्ठिर रोमांच हो आया मुझे पितामह ! आपकी बात सुनकर।

भीष्म देवियाँ परस्पर मिल चुकीं धर्मराज ?

युधिष्ठिर (एक ओर हाथ उठाकर) हाँ तात ! भानुमती और सुभद्रा के बीच में पुत्र-वधू बैठी है। यह दृश्य वासुदेव अपनी आँखों देखते तो...

कृष्ण (प्रवेश कर) बिना बुलाये मैं आ गया पितामह ! यह देखने कि पितामह आज क्या इन्द्रजाल रचेंगे।

भीष्म अपार्थिव शरीर से मैं बराबर तुम्हें अपने पास पाता हूँ, जानता हूँ गोपाल मुझे भूलेंगे नहीं, फिर उनके पास सन्देश क्या भेजूँ ?

कृष्ण अत्यधिक आदर देकर संकोच में न डालें मुझे, आपके सामने जो स्थान धर्मराज का है...सुयोधन का है, वही मेरा भी है।

भीष्म अहो भाग्य गोपाल ! वलि के नारायण बन कर जो आज भोर में ही मुझे दर्शन मिला।

युधिष्ठिर वासुदेव भोर में ही आये ?

भीष्म हाँ भद्र ! और यह जानते थे कि आज युद्ध में क्या होने वाला है।

कृष्ण धर्मराज को मोह में न डालें तात !

भीष्म जगत् का मोह मिटाने के लिए जब तुम्हारा अवतार हो गया तो फिर धर्मराज के मोह की चिन्ता मुझे नहीं है। सर्प को औषधि मुंह में लेकर चलनेवाले पर सर्प का विष नहीं चढ़ता।

कृष्ण भानुमती और सुभद्रा दोनों का सन्ताप उत्तरा के माध्यम से मिट रहा है, शेष रात्रि अब उतनी दारुण नहीं रहेगी।

भीष्म हम सब का सन्ताप है वह वासुदेव ! सारे लोक का, धरती और आकाश का सन्ताप है यह...जिसके मिटाने की कामना मेरे भीतर वैसे ही जाग उठी जैसे घने काले मेघ में बिजली जाग उठती है। दुःख से मुक्ति ही तो स्वर्ग है।

कृष्ण तो फिर यह जगत् क्या है ?

भीष्म (मन्द हँसी) ह...ह...ह... काल के पाश में पड़े हुए को परीक्षा नहीं लेते, इसकी भी आयु होती है वासुदेव !

कृष्ण बाल-ब्रह्मचारी पितामह भीष्म काल के पाश से सदैव परे हैं; काल की इच्छा पर जो शासन करते हैं और इसीलिए जो इच्छा-मृत्यु है, उनके श्रीमुख से मैं इसका उत्तर चाहता हूँ।

भीष्म यह सब तो तुम्हारा अनुग्रह है भगवान् ! मेरे लिए यह संसार पार करने का सेतुमात्र है, इस पार से उस पार...बस

इतना ही है। इसके ऊपर भँवर बना कर रहना मैं जीव का अज्ञान मानता हूं।

**कृष्ण** सुन रहे हो धर्मराज ? अब तो तुम्हें अभिमन्यु का शोक न होगा।

**युधिष्ठिर** जगत् के भय और शोक को जिस दिन ज्ञान सब ओर से घेर लेगा तब यह सेतु भी न रहेगा और न किसी को पार करना होगा।

**भीष्म** धन्य हो भद्र! तुम्हारी वाणी इस समय ठीक तुम्हारे अनुरूप है।

**कृष्ण** समुद्र अपना धन अपने भीतर छिपाये रहता है, वही दशा धर्मराज की भी है पितामह! डरते हैं कहीं कोई ले ले या...

**युधिष्ठिर** फिर द्यूत में न हार जायँ यही कह रहे हो ?

**भीष्म** प्रकृति में ये कर्म बराबर होते रहेंगे भद्र! द्यूत भी और युद्ध भी...इस बार उसके माध्यम तुम रहे, दूसरी बार दूसरे होंगे। कहीं भूल तो नहीं रहा हूँ वासुदेव ?

**कृष्ण** लोक-जीवन को अग्रसर करने के लिए युद्ध और द्यूत चलते ही रहेंगे। प्रकृति के सबसे शुद्ध कार्य का नाम युद्ध है और उसकी विकृति द्यूत का रूप लेती है। कुरु-भूमि के इस समर में लोक-जीवन अपनी विकृति से छूट कर स्वाभाविक रूप में खड़ा होगा।

**भीष्म** और स्पष्ट करो भद्र!

**कृष्ण** यह युद्ध उस द्यूत का परिणाम है तात, जिसमें धर्मराज अनायास कुछ लोगों के जाल में फँसकर अपना सब कुछ हार